* ओ३म् *

"आर्य साहित्य विभाग" ग्रन्थमाला का आठवा पुष्प

सत्यार्थ-प्रकाश भाष्य

(प्रथम समुल्लास)

भाष्यकार—
वाचस्पति ऐम० ए० बी० ऐस० सी० विद्यावाचस्पति
अध्यक्ष 'आर्य साहित्य विभाग'
आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा लाहौर ।

प्राक्कथन लेखक—
श्री महात्मा हंस राज जी
प्रधान आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा लाहौर

प्रथम बार २००० | ज्येष्ठ ११० दयानन्दाब्द | मूल्य ।=)

"आर्य साहित्य विभाग ग्रन्थमाला"

सम्पादक—

वाचस्पतिः ऐम० ए०

ग्रन्थांक ८

प्रकाशक—

अध्यक्ष 'आर्य साहित्य विभाग'

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा लाहौर

बाम्बे मैशीन प्रेस, मोहनलाल रोड, लाहौर में शान्तिप्रिय मैनेजर के प्रबन्ध
से वाचस्पति ऐम० ए० अध्यक्ष 'आर्य साहित्य विभाग'
गणपत रोड लाहौर के लिये छापा ।

आचार्य धर्मवीर आर्य
ई. वैदिक पुस्तकालय मुम्बई

* ओ३म् *

प्राक्-कथन

सत्यार्थप्रकाश ऋषि दयानन्द के विचारों का कोष है । वेदों, शास्त्रों के पठन पाठन, मनन और निदिध्यासन के पश्चात् तथा मनुष्य समुदाय के भिन्न २ पंक्तियों के व्यवहारों को देख भाल कर जो विचार उन के हृदय में उत्पन्न हुए उनको ऋषि ने इस अमूल्य और प्रसिद्ध पुस्तक में दर्ज कर दिया। यह पुस्तक आर्य-समाज का 'सुदर्शन-चक्र' है, जिस के प्रहारों के सामने मतवादियों का ठहरना बड़ा ही कठिन है । इस 'चक्र' को कुण्ठित करने के लिये बहुत से पण्डितों और अन्य धर्मावलम्बियों ने अत्यन्त प्रयत्न किया है। उन्हों ने इस की पंक्ति २ पर आक्षेप करके इस के गौरव को घटाने और इस के सत्यार्थ को मिथ्या प्रकट करने का परिश्रम किया है। इन आक्षेपों के कारण सर्व साधारण आर्य जनता के हृदयों में भी शंकाएं उत्पन्न होने की सम्भावना है। इस सम्भावना को खण्डन करने के लिये आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा ने यह उचित समझा है कि सत्यार्थप्रकाश पर जितने आक्षेप विरोधियों ने किये हैं, उन का उत्तर देकर यह प्रकाशित किया जाय कि ऋषि के विचार वेद तथा स्वच्छ बुद्धि के अनुकूल हैं। उन्हों ने प्राचीन आर्य ऋषियों के ही विचारों, मन्तव्यों और आचारों का आश्रय लिया है ।

पं० वाचस्पति जी ऐम० ए० ने सत्यार्थप्रकाश के पहले समुल्लास पर जो आक्षेप किये गए हैं, उन का उत्तर दे कर इस पुस्तक को तय्यार किया है। सब सज्जनों से प्रार्थना है कि वे इस को विचार पूर्वक पढ़ कर स्वयं ही निर्णय करें कि आक्षेपकों ने किस प्रकार सत्य को दमन करने का साहस किया है । आर्य भाईयों से प्रार्थना है कि वे लेखक को उत्साहित करें ताकि वह सत्यार्थ प्रकाश के शेष समुल्लासों को भी इसी प्रकार पब्लिक के सामने पेश कर सके ।

मैं आशा करता हूं कि आर्य सज्जन इस पुस्तक से लाभ उठा कर वाचस्पति जी को प्रोत्साहित करेंगे।

हंसराज

आधार ग्रन्थ सूची

ऋग्वेद । यजुर्वेद । सामवेद । अथर्ववेद । तैत्तिरीय संहिता । ऐतरेय ब्राह्मण । शतपथ ब्राह्मण । गोपथ ब्राह्मण । तैत्तिरीय ब्राह्मण । ताण्ड्य ब्राह्मण । कौषीतकि ब्राह्मण । जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण ।

ईशोपनिषद् । कठोपनिषद् । प्रश्न उपनिषद् । मुण्डक उपनिषद् । माण्डूक्य उपनिषद् । ऐतरेयोपनिषद् । तैत्तिरीयोपनिषद् । छान्दोग्योपनिषद् । बृहदारण्यकोपनिषद् । श्वेताश्वतरोपनिषद् । अष्टाध्यायी । महाभाष्य । पारस्कर गृह्य सूत्र । महाभारत । मनुस्मृति । भगवद्गीता । पञ्चमहायज्ञविधि । सत्यार्थप्रकाश १८७५ ॥

ऋग्वेद भाष्य दयानन्द सरस्वती । ऋग्वेद भाष्य–सायण । ऋग्वेद भाष्य आत्मानन्द । यजुर्वेद भाष्य–दयानन्द सरस्वती । यजुर्वेद भाष्य–उवट । यजुर्वेद भाय महीधर । अथर्ववेद भाष्य–क्षेमकरणदास त्रिवेदी । ईश, कठ, माण्डूक्य, ऐतरेय छान्दोग्य, बृहदारण्यक, उपनिषदों पर शांकर भाष्य । कुछ उपनिषदों पर पं० भीमसेन का भाष्य । निरुक्त–स्कन्द-स्वामीकृत भाष्य । गौड़पादीयकारिका । पञ्चदशी । ओंकार निर्णय–पं० शिवशंकर । वैदिककोष-हंसराज । भास्कर प्रकाश । संस्कार चन्द्रिका । आर्य धर्म–पं० राजाराम ।

A Sanskrit—English dictionary Monior william. Pt. Guru-datta's works. Apte's dictionary.

कैवल्योपनिषद् । मैत्र्युपनिषद् । चूलिकोपनिषद् । रामोत्तरतापिन्युपनिषद् । महानारायण उपनिषद् । नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषद् । ब्रह्मोपनिषद् । स्वरोपनिषद् । हंसोपनिषद् । स्कन्ध उपनिषद् । कौषीतकि उपनिषद् । नृसिंहपूर्वतापिन्युपनिषद् । गोपीचन्दनोपनिषद् ।

विष्णु सहस्रनाम । सूर्यशतनाम । गोपालसहस्रनाम । शिवसहस्रनाम । गणेश-महिम्नः स्तोत्र । सूर्य सहस्रनाम । कुछ शिला लेख ।

---

* ओ३म् *

भाष्यकार के कुछ शब्द

सत्यार्थप्रकाश ने अन्धकार को नाश करने के लिये सूर्य के उज्ज्वल प्रकाश की तरह काम किया है। सत्यार्थप्रकाश के पढ़ते ही सहस्रों लोगों पर जादू चला, उन के विचारों ने पल्टा खाया और आर्य समाज के बड़े २ विरोधी आर्य धर्म में दीक्षित हो गए।

सत्यार्थप्रकाश की युक्तियां कितनी अकाट्य हैं, लेखन शैली कितनी ओजस्विनी है, यह ग्रन्थ कितना महत्वशाली है, इस विश्वकोष(Encyclopedea) में विद्याका कितना भारी कोष है, इस समुद्र में कैसे २ बहुमूल्य रत्न भरे पड़े हैं, इस समुद्र में लोकहित कैसे ठाठें मार रहा है, यह ग्रन्थ कैसे देशभक्ति, सच्ची जातीयता और आर्य संस्कृति के प्रेम के भावों से भरपूर है, यह पाठकों को कैसे कल्याण के मार्ग का पथिक बनाने वाला है— यह सब सत्यार्थप्रकाश के इस भाष्य के समाप्त होने पर जो विस्तृत भूमिका लिखी जायगी उस में बताया जायगा। इस समय केवल कुछ शब्दों में इस भाष्य का परिचय मात्र ही देना है।

आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का चिर काल से विचार था कि सत्यार्थप्रकाश का एक भाष्य तय्यार कराया जाय। परन्तु विचार कार्यरूप में तभी परिणत होना आरम्भ हुआ जब 'आर्य साहित्य विभाग' की स्थापना हुई। तब यह पवित्र कार्य सभा ने मुझे सौंपा। मैं जानता हूं कि इस महान् कार्य को करने के लिये मैं योग्य नहीं हूं, परन्तु मैं साथ ही यह भी समझता हूं कि यह कार्य अत्यन्त आवश्यक है, मुझ से अधिक योग्य व्यक्ति इस कार्य को हाथ में नहीं ले रहे, इस लिए मैंने इस कार्य को अपनी योग्यतानुसार करने का साहस किया है।

मैंने लग भग १०० पुस्तकें जो कि सत्यार्थप्रकाश के विरुद्ध लिखी गई हैं, इकट्ठी कीं। इन में से किसी में सत्यार्थ प्रकाश के किसी भाग पर आक्षेप किए गए हैं, और किसी में किसी और भाग पर। विपक्षियों ने यत्न किया है कि सत्यार्थप्रकाश का कोई भी सिद्धान्त न बचे जिस पर कि उन की ओर से आक्षेप न हुआ हो। कई लोगों ने अपने इस प्रयत्न में गाली गलोच और असभ्य भाषा का आश्रय लिया है। मैंने इस भाष्य में जान बूझ कर ऐसे लोगों के प्रति उपेक्षा से ही काम लिया है, गाली गलोच और असभ्य भाषा का उत्तर मैंने नहीं दिया। सैद्धान्तिक आक्षेपों का उत्तर मैंने अपनी योग्यता के अनुसार दिया है। मैंने अपनी ओर से यत्न किया है कि अब

तक जितने भी आक्षेप हो चुके हैं उन सब का उत्तर दूं। परन्तु सम्भव है कि मुझ से कुछ आक्षेपों के उत्तर रह गए हों, सम्भव है कि कुछ आक्षेप ही मेरे सामने न आए हों और साथ ही यह भी सम्भव है कि कई आक्षेपों के उत्तर कई विद्वान् मुझ से अच्छे दे सकते हों, इस लिए विद्वज्जनों से मेरी प्रार्थना है कि वे मुझे इस भाष्य की त्रुटियों से सूचित करें, मैं उन का अत्यन्त कृतज्ञ हूंगा और अगले संस्करण में वे त्रुटियां निकाल दूंगा, क्योंकि यह ग्रन्थ केवल मेरा ही नहीं, किन्तु सारे आर्य समाज का है। परन्तु साथ ही मेरा यह विश्वास है कि यह ग्रन्थ विपक्षियों के मुंह बन्द करने में पर्याप्त सहायक होगा। इस भाष्य में केवल आक्षेपों का उत्तर ही नहीं दिया गया, बल्कि कई सिद्धान्तों की पुष्टि में नये प्रमाण भी दिए गए हैं। सत्यार्थप्रकाश के कई स्थलों को अधिक स्पष्ट करने के लिए कुछ व्याख्या भी की गई है। कई स्थलों को सरल करने का प्रयत्न किया गया है।

इस समय केवल प्रथम समुल्लास का भाष्य ही आर्य जनता की सेवा में भेंट किया जाता है। इस समुल्लास में परमात्मा के नाम जो व्याकरण की रीति से ऋषि ने बताए हैं, साहित्य से दिखाए गये हैं। इस विषय में वेद से लेकर पौराणिक साहित्य तक से उद्धरण दिए गए हैं। नामों की बहुत थोड़ी संख्या को छोड़ कर शेष सब के लिए साहित्य से पुष्टि ढूंड दी गई है। आक्षेपों का उत्तर तो दिया ही गया है।

सारी प्रैस कापी तय्यार करके श्री महात्मा हंसराज जी को सुनाई गई, उन्हों ने ग्रन्थ को अच्छा बनाने के लिए कई अच्छी २ बातें बताईं। वे नियम पूर्वक समय देते रहे। उन्हों ने इस ग्रन्थ का प्राक्कथन (Foreword) लिखा। उन की इस कृपा के के लिए मैं उन का हृदय से आभारी हूं।

श्रीयुत पं० भगवद्दत्त जी रीचर्स स्कालर ने मुझे बहुत सहायता दी। उन्हों ने न केवल मुझे कई सैद्धान्तिक कठिनाईयों का हल सुझाया बल्कि दयानन्द कालिज के रीसर्च विभाग जिस के कि वे सुपरिण्टण्डण्ट हैं—के पुस्तकालय से बड़ी उदारता से मुझे पूरा लाभ उठाने की आज्ञा दी रखी। उन की इस कृपा और सहायता के बिना मैं यह ग्रन्थ न लिख सकता।

मेरे मित्र पं० रामलाल जी शास्त्री रीसर्च स्कालर ने व्याकरण सम्बन्धी बातों में मुझे बहुत सहायता दी है। पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु ने बहुत सी पूर्वपक्ष की पुस्तकें रामलाल कपूर ट्रस्ट के पुस्तकालय से दीं। श्री हंसराज जी पुस्तकाध्यक्ष रीसर्च पुस्तकालय दयानन्द कालिज ने पुस्तकालय में अपनी सम्मति और उदारता पूर्वक पुस्तकें दे कर मेरी सहायता की। इन सब महानुभावों का मैं हृदय से कृतज्ञ हूं।

हमारी सभा के योग्य उपदेशक पं० बुद्धदेवजी (मीरपुरी) और ठा० अमरसिंहजी और रीसर्च विभाग के कर्मचारी, म० मामराज जी, पं० प्रेमनिधिजी शास्त्री पं० पीताम्बरदत्त जी शास्त्री और पं० विश्वनाथ जी आर्योपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब तथा अन्य मित्र जो मुझे समय २ पर सहायता देते रहे हैं, उन सब का मैं कृतज्ञ हूं ।

आशा करता हूं, कि आर्य जनता इस ग्रन्थ को अपना कर मुझे उत्साहित करेगी ताकि मैं शेष समुल्लासों के भाष्य को शीघ्र उस की भेंट कर सकूं ।

लाहौर
ज्येष्ठ ११०
दयानन्दाब्द

निवेदक
वाचस्पति

नोट—इस ग्रन्थ में पृष्ठसंख्या सत्यार्थप्रकाश के २२ वें संस्करण की दी गई है ।

शुद्धाशुद्ध पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	११	प्रत्यं	प्रत्यक्षं
२	४	तात्पपर्य	तात्पर्य
५	१५	म	में
४	१७	यजर्वेदी	यजुर्वेदी
५	४	०रागाः।	०रागाः
७	५	सर्बान्	सर्वान्
७	२८	m	M
८	१	यहा	यहां
८	१०	पिया	किया
९	१२	एतस्मस्मा०	एतस्मा०
९	२०	देखन	देखने
१०		तैजस्	तैजस
१०	३२	करिका	कारिका
१२	१४	है	हैं
१३	१०	मामाभिः	मायाभिः
२१	२९	शव्द	शब्द
२३	१	श्रात्राद्वा०	श्रोत्राद्वा०
२५	२०	शव०	शत०
२६	६	ब्रह्माभदनो०	ब्रह्माभेदेनो०
२६	१९	मात्र	मात्र से
२८	१४	मैं	में
२८	२७	हैं	है
२६	२८	कारण	करण
३०	१६	मरमात्मा	परमात्मा
३०	१६	और है	है और
३२	१	०ऽद्भुता	०ऽद्भुतो
३२	२०	जनानमग्रे	जनानामग्रे
३३	२६	कां	का
३५	१०	०मपारजितम	मपराजितम
३६	५	स्वस्तिन०	स्वस्ति न०
३६	१९	मध्वउ०	मध्व उ०
३८	२०	५ ३॥	५।३॥
४०	१६	यहा	यहां
४१	२४	०वरो०	०वारो०
४३	५	सव	सब
४३	९	व्यवारयति	व्यवहारयति
४३	१४	सभय	समय
४५	१९	संहार का०	संहारका०
४६	२६	शम्भुभवो	शम्भुर्भवो
४७	५	म	में
४७	६	मत्र्यु०	मैत्र्यु०
४८	१३	यहा	यहा
४९	१४	मङ्गरलच्	मङ्गेरलच्
४८	२०	बृहस्पपति	बृहस्पति
४९	१०	दीप्ताशु	दीप्तांशु
५३	२८	नम	नाम
५४	२४	एअपा०	एकपा०
५५	७	बृहति	बृंहति
६६	१०	तच्छ्री त्यु०	तच्छ्रीत्यु०
६७	१०	हे	है
६८	१४	इण	इण्
६९	१६	० भेत ०	० भेद् ०
७२	१५	नृहिंह	नृसिंह
७३	२७	आखें	आंखें
७४	९-१०	यहा	यहां
७९	१०	यहा	यहा
८०	१	आाद	आदि
८०	१०	हैं	है
८०	२८	आहुतिया	आहुतिया
८२	११	अवश्यकता	आवश्यकता

विषय सूची

Scanned with CamScanner

य
अ

* ओ३म् *

सत्यार्थ प्रकाश भाष्य

सच्चिदानन्देश्वराय नमो नमः

अथ सत्यार्थप्रकाशः

प्रथम समुल्लास

मूल—ओ३म् शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा।

शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ॥

नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि ।

त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि

सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु

अवतु मामवतु वक्तारम् ॥ ओं शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः ॥१॥ (पृष्ठ१)

भाष्य—एक महाशय 'त्वमेव प्रसं ब्रह्मासि' के विषय में प्रश्न करते हैं—

प्रश्न—ईश्वर प्रत्यक्ष है वा परोक्ष ? यदि प्रत्यक्ष कहो तो दिखाओ वह कहां है ? यदि परोक्ष कहो तो 'त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि' इस मन्त्र में उस को प्रत्यक्ष क्यों कहा है ? अथवा यही बताओ कि ईश्वर को प्रत्यक्ष क्यों कहा है ? और प्रत्यक्ष का क्या अर्थ है ?

उत्तर—यह आक्षेप ऋषि दयानन्द पर नहीं है, बल्कि यह उपनिषद् पर है, उपनिषद् सनातन धर्मियोंके लिये भी जिन का प्रतिनिधि वादी है, वैसी ही मान्य है जैसी

आर्य समाजियों को, परन्तु फिर भी वादी के इस आक्षेप का उत्तर हम दे देते हैं। उपनिषद् के इस वाक्य का अभिप्राय यह है कि तू ही प्रत्यक्ष अर्थात् निश्चित ब्रह्म है अर्थात् तेरे सिवाय और कोई ब्रह्म नहीं है। इस का यह तात्पर्य नहीं कि वह इन चर्म चक्षुओं से दीखता है। इस का वास्तविक तात्पपर्य उपनिषदें स्वयं बताती हैं—

आविः सन्निहितं गुहाचरन्नाम महत् पदमत्रैतत् समर्पितम्। एजत् प्राणन्निमिषच्च यदेतज्जानथ सदसद्वरेण्यं परं विज्ञानाद्यद्वरिष्ठं प्रजानाम्॥ मुं० २।२।१॥

अर्थ—(ब्रह्म छिपा हुआ नहीं) वह प्रकट है, निकट है, हृदय में रहता है, और महान् आधार है कि जो चलता है, सांस लेता है, और आंख झपकता है वा जो कुछ स्थूल और सूक्ष्म है उसी में परोया हुआ है, तुम उसी को जानो, वह सब से श्रेष्ठ है और प्रजाओं के विज्ञान से परे है।

यजुर्वेद में कहा है—

तद्दूरे तद्वन्तिके॥ अ० ४० मं० ५॥

अर्थ—वह दूर है और वह निकट है।

फिर प्रश्न यह उपस्थित होता है कि वह किन के निकट है और वह कैसे जाना जाता है और वह किन के लिये प्रकट है, इस का उत्तर कठ उपनिषद् में दिया है—

दृश्यते त्वग्र्यया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः॥ ३। १२॥

अर्थ—वह तीव्र और सूक्ष्म बुद्धि द्वारा सूक्ष्मदर्शी योगियों से देखा जाता है।

प्रत्यक्ष का अर्थ यही है कि सूक्ष्म बुद्धि वाले योगी लोगों के लिये वह प्रकट है। भक्तों के हृदय में भी वह प्रत्यक्ष होता है। परन्तु क्योंकि उस का चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं होता इसलिये उसे परोक्ष कहा है।

मूल—अर्थ—(ओ३म्) यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है। (पृष्ठ १)

भाष्य—यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है—वेद आदि सच्छास्त्रों में ओं के अतिरिक्त परमेश्वर के जितने भी नाम हैं वे अन्य पदार्थों के नाम भी हो जाते हैं, जैसे—

ब्रह्म वै ब्राह्मणः॥ तैत्ति० ब्रा० ३। ९। १४। २॥

अर्थात् ब्रह्म ही ब्राह्मण है। यहां ब्रह्म शब्द ब्राह्मण के लिये आया है। व्याकरण महाभाष्य की भी इसी अर्थ में साक्षी है—

समानार्थावेतौ वृषशब्दो वृषन् शब्दश्च ब्रह्मन्शब्दो ब्राह्मणशब्दश्च॥५।१।७॥

महाभारत में ईश्वर शब्द राजा के अर्थ में आया है—

ईश्वरस्त्वां महाराजो महाप्राज्ञ दिदृक्षते॥ उद्योग० अ० ३९ श्लो० २॥

द्वारपाल विदुर को कहता कि महाराज धृतराष्ट्र आप को देखना चाहते हैं।

'ओं' ईश्वर का निज नाम है, इस विषय में योग भाष्य में व्यास मुनि "तस्य वाचकः प्रणवः" ॥ योग १ । २८ ॥ पर भाष्य करते हुए कहते हैं कि 'ओं' शब्द का ईश्वर के साथ अवस्थित अर्थात् नित्य सम्बन्ध है।

'ओं' नाम कितना पवित्र है, इस की कितनी महत्ता है, इस के समक्ष दूसरे नाम कितने गौण हैं इस विषय में जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में एक बड़ी सुन्दर कथा आती है—

प्रजापति ने देवताओं को उत्पन्न किया। उन के पश्चात् पापी मृत्यु को उत्पन्न किया। देवताओं ने प्रजापति के पास जाकर कहा कि यदि आपने हमारे पश्चात् मृत्यु को उत्पन्न करना था तो हमें क्यों उत्पन्न किया। प्रजापति ने उत्तर दिया कि छन्दों को लाओ, उन एक एक में ठीक स्थान में प्रवेश कर जाओ तब तुम मृत्यु से बच जाओगे।

वसु (देवता) गायत्री (छन्द) को लाए और उस में प्रवेश कर गए, गायत्री ने उन को छिपा लिया। रुद्र (देवता) त्रिष्टुप् (छन्द) को लाए और उस में प्रविष्ट हो गए, उसने उन को छिपा लिया। आदित्य (देवता) जगती (छन्द) को लाकर उस में प्रविष्ट हो गए, उसने उन को छिपा लिया। विश्वे देवा (देवता) अनुष्टुप् छन्द को ला कर उस में प्रविष्ट हो गए, उसने उन को छिपा लिया। मृत्यु ने उन को इस स्वर रहित ऋचा में देख लिया, जैसे कोई मणि में मणिसूत्र को देख लेता है। देवता स्वर में प्रविष्ट हुए, मृत्यु उन को स्वर में न देख सका, परन्तु उस ने स्वर (आवाज़) के पीछे जा कर देवताओं को ढूण्ड लिया—

त ओमित्येतदेवाक्षरं समारोहन्। एतदेवाक्षरं त्रयीविद्या, यददोऽमृतं तपति तत्प्रपद्य ततो मृत्युना पाप्मना व्यावर्तन्त। एवमेवैवं विद्वान् ओमित्येतदेवाक्षरं समारुह्य यददोऽमृतं तपति तत्प्रपद्य ततो मृत्युना पाप्मना व्यावर्तते॥

जै० उ० ब्रा० १।१८॥

अर्थ—तब वे सब देवता 'ओं' अक्षर पर चढ़ गए। वह 'ओं' अक्षर ही त्रयी विद्या वेद है। उस 'ओं' अक्षर में अमृत प्रज्वलित हो रहा है। उसी 'ओं' अक्षर ने इस लिये उन देवताओं को पुनः अमर बना दिया, पापी मृत्यु से बचा दिया। ऐसा जानने वाला विद्वान् 'ओं' इस अक्षर पर चढ़ कर जिस में कि अमृतत्व प्रकाशित हो रहा है मृत्यु से बच जाता है।

'ओं' के महत्व के विषय में ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है—

तान् वेदानभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रीणि शुक्राण्यजायन्त, भूरित्येव ऋग्वेदादजायत, भुवरिति यजुर्वेदात् स्वरिति सामवेदात्। तानि शुक्रा-

ण्यभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो वर्णा अजायन्ताकार उकारो मकार इति ताने-कधा समभरत्तदो३मिति ॥ ऐत० ५ । ३२ ॥

अर्थ—वेदों को तपाया, उन तपाए हुओं से तीन शुक्र उत्पन्न हुए—ऋग्वेद से भूः, यजुर्वेद से भुवः और सामवेद से स्वः । फिर उन तीनों शुक्रों को तपाया गया, उन तपाए हुओं से तीन वर्ण उत्पन्न हुए-अकार, उकार, मकार, इन तीनों को इकट्ठा किया गया तब 'ओ३म्' शब्द बना। इस का तात्पर्य हुआ कि ' ओं ' शब्द ही सब वेदों का सार और आधार है, ' ओं ' शब्द ही वेदों का परम और मुख्य विषय है।

तैत्तिरीय में आता है—

ओमिति ब्रह्म। ओमितीदꣳसर्वम् । ओमित्येतदनुकृति ह स्म वा अप्यों श्राव-येत्याश्रावयन्ति । ओमिति सामानि गायन्ति ओꣳशोमिति शस्त्राणि शꣳसन्ति । ओमित्यध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति । ओमिति ब्रह्मा प्रस्तौति । ओमित्यग्निहो-त्रमनुजानाति । ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मोपाप्नुवानीति ब्रह्मैवोपाप्नोति ॥

॥ तै० उ० १।८ ॥

अर्थात् 'ओं' ब्रह्म है। ओं ही सब कुछ है अर्थात् 'ओं' नामक परमात्मा ही इस जगत् म सार वस्तु है। यज्ञ में 'ओं' यह शब्द अनुकरण वाचक है, यह प्रसिद्ध है, यज्ञ में इसी को सुनते सुनाते हैं। सामवेदी ओं का ही गान करते हैं। ऋग्वेदी लोग विविध शास्त्र से इसी ' ओं ' की स्तुति गान करते हैं। यजर्वेदी अध्वर्यु भी ओं का उच्चारण करता है। ब्रह्मा ' ओं ' के द्वारा ही आज्ञा करता है। 'ओं' कह कर ही अग्निहोत्र की अनुज्ञा देता है, ब्रह्मवित् पुरुष ' ओं ' शब्द के द्वारा प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि मैं इस के द्वारा ब्रह्म को प्राप्त होऊं, वे अवश्य ही ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। कठोपनिषद् में आता है—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥२।१५॥

अर्थ—सब वेद जिस पद का कथन करते हैं, सारे तप जिस को कहते हैं, जिस की इच्छा करते हुए ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं, उस पद को संक्षेप से तेरे लिये कहता हूं, वह ' ओम् ' है।

एतद्‌ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतदेवाक्षरं परम् ।
एतद्‌ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥ २ । १६ ॥
एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ २ । १७ ॥

अर्थ—यह ' ओं ' अक्षर ही ब्रह्म है, यह ही अक्षर सर्वोत्तम है, इसी अक्षर को जान कर जो कुछ जो चाहता है वह उस को प्राप्त हो जाता है ॥ २ । १६.॥

यह ओंकार रूपी आश्रय श्रेष्ठ है, यह आश्रय सर्वोत्तम है, इसी आश्रय को जान कर मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ २ । १७ ॥

गीता में इस 'ओं' नाम की महिमा ऐसे वर्णन की है—

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥ गी० ८ । ११ ॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥ ८ । १३ ॥

अर्थ—जिस अक्षर को वेदवेत्ता कहते हैं, जिस में वीतराग यति लोग प्रवेश करते हैं, जिस की इच्छा करते हुए ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं, उस पद को तेरे लिये संक्षेप से कहता हूं ॥ ८ । ११ ॥

'ओं' इस एकाक्षर ब्रह्म का मरते समय जो परमात्मा को स्मरण करता हुआ उच्चारण करता है वह परम गति को प्राप्त होता है ॥ ८ । १३ ॥

मुण्डक उपनिषद् में आता है—

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥ २ । २ । ४ ॥

अर्थात् 'ओं' नाम धनुष है, आत्मा शर है, ब्रह्म उस का लक्ष्य है । शर की तरह से तन्मय हो कर अप्रमत्त अवस्था में लक्ष्य को बीन्धना चाहिये ।

इसी प्रकार से आर्ष ग्रन्थों में 'ओं' नाम की महिमा भरी पड़ी है ।

प्रश्न—आर्य समाजी यह सदा कहते रहते हैं कि 'ओं' परमात्मा का सर्वोत्तम नाम है, परन्तु वेद में तो यह कहीं पाया ही नहीं जाता ।

उत्तर—प्रतीत होता है कि जो लोग यह प्रश्न करते हैं उन्हों ने वेद के दर्शन नहीं किये । वेद में 'ओं' शब्द अनेक स्थलों पर आता है, जैसे—

ओं क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतꣳ स्मर ॥ यजु० ४० । १५ ॥

ओं खं ब्रह्म ॥ यजु० ४० । १७ ॥

प्रश्न—यजुर्वेद के ४० वें अध्याय को कई विद्वान् उपनिषदों में गिनते हैं, इस लिये इस अध्याय को छोड़ कर अन्य किसी स्थान पर 'ओं' शब्द दिखाओ ।

उत्तर—यजुर्वेद के ४० वें अध्याय को यदि उपनिषद् माना जाता है, तो इस बात से तो कोई भी नकार नहीं करता कि यह अध्याय यजुर्वेद का भाग है, इस लिये यदि इस अध्याय में 'ओं' शब्द आता है, तो भी यह आक्षेप कि 'वेद में 'ओं' शब्द नहीं है' निर्मूल हो जाता है । आप के आक्षेप का उत्तर हो जाने पर भी हम ओं शब्द वेद में अन्य स्थान पर दिखाते हैं—

मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टम् ।
यज्ञं समिमं दधातु विश्वेदेवास इह मादयन्तामों प्रतिष्ठ ॥ यजु० २ । १३ ॥

अर्थ—अति गमनशील वेगवान् मन यज्ञ सामग्री का सेवन करे और वेदों का अधिपति वह परमेश्वर मेरे इस अहिंसनीय यज्ञ का विस्तार करे और वह ईश्वर मेरे इस यज्ञ को अच्छे प्रकार धारण करावे और सकल आए हुए विद्वान् इस यज्ञ में आनन्द भोग करें (ओम्=) हे ईश्वर आप मेरे हृदय में प्रतिष्ठित होवें ।

ऋग्वेद में 'ओं' शब्द देखें—

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वेदेवास आगमत । दाश्वांसो दाशुषः सुतम् ॥
ऋ० १ । ३ । ७ ॥

अर्थ—इस मन्त्र में 'ओमासः' समस्त पद आया है, असमस्त रूप से इस के दो टुकड़े 'ओम्+आसः' हो जाएंगे । 'ओं' ब्रह्म का नाम है, आस् का अर्थ समीप बैठने वाले का है, अर्थात् ब्रह्म के समीप बैठने वाले ब्रह्मज्ञानी । अतः मन्त्र का अर्थ यह हुआ—

हे सकल विद्वानो ! सत्कार करने वाले मेरे गृह पर सोम रस युत विविध प्रकार के पदार्थों को ग्रहण करने के लिये आप लोग कृपा करके आवें। आप लोग कैसे हैं ? (ओमासः) ब्रह्म के निकट बैठने वाले अर्थात् ब्रह्म के तत्व को जानने वाले और प्रजाओं को धारण पोषण करने वाले और विविध विज्ञान को देने वाले हैं।

वैदिकेतर जैन बौद्ध आदि सम्प्रदायों में भी 'ओं' शब्द का परम मान है । इस विषय में एक उदाहरण मोनियर विलियम्ज़ अपने कोष 'A sanskrit English Dictionary' में देते हैं—

Buddhists place Om at the beginning of their Shadakshari or mystical formulary in six syllables viz Om mani Padme Hum.'

अर्थात् बौद्ध 'ओं' शब्द को अपनी षडाक्षरी या छ अक्षरों वाले मन्त्र के आरम्भ में रखते हैं, अर्थात् 'ओं मणि पद्मे हूम'।

मूल—क्योंकि इस में जो अ, उ और म् तीन अक्षर मिल कर एक (ओम्) समुदाय हुआ है, इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आ जाते हैं, जैसे—**अकार** से विराट् अग्नि और विश्वादि । **उकार** से हिरण्यगर्भ, वायु और तैजसादि । **मकार** से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है । (पृष्ठ १)

भाष्य—यह भाव माण्डूक्योपनिषद् के निम्न लिखित वाक्यों के आधार पर लिखा गया है—

सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोंकारोऽधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति ॥ ८ ॥

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्रा ॥ ९ ॥
स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रा ॥ १० ॥
सुषुप्तस्थानः प्राज्ञः मकारस्तृतीया मात्रा ॥ ११ ॥

इसी विषय में फिर आता है—

आप्तेरादिमत्त्वाद्वाप्नोति ह वै सर्वान् कामान् आदिश्च भवति य एवं वेद ॥९॥

यहां अकार को 'आप्लृ व्याप्तौ' धातु से बना दिखाया गया है, अथवा आदि शब्द का संक्षेप बताया गया है। जाग्रत अवस्था वाला विश्व नामक प्रथमपाद ही 'ओंकार' की प्रथम मात्रा अकार है। जिस प्रकार अकार सब से प्रथम अक्षर सब वर्णों में व्याप्त है, उस के बिना कोई वर्ण नहीं बोला जाता, इसी प्रकार सब पादों में पहला विश्व नामा पाद तीनों पादो में व्यापक है, व्यापक होने से ही उस का नाम विराट् है।

उत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञानसन्तति समानश्च भवति······ ॥ १०॥

'उ' उत्कर्ष वा उभय से बना बताया गया है। उत्कर्ष कृष् धातु से बना है, जिस का अर्थ खेञ्चना है-चित्र खेञ्चना। इस लिये 'उ' का अर्थ चित्र तैय्यार करना (Design) और बनाना (Execute) है।

मितेरपीतेर्वा वा मिनोति ह वा इदं सर्व········· ॥ ११ ॥

'म्' का अर्थ वह है जो कि सब को माप रहा है अथवा सब का आश्रय है।

सृष्टि की तीन अवस्थाओं को ब्रह्म की तीन अवस्थाएं कल्पना करके 'ओं' की तीन मात्राओं के साथ मिलाया गया है। मनु महाराज इस विषय में लिखते हैं—

अकारश्चाप्युकारश्च मकारश्च प्रजापतिः।
वेदत्रयान्निरदुहद् भूर्भुवः स्वरितीति च ॥ म० २। ७६ ॥

अर्थ—प्रजापति ने अकार, उकार और मकार को वेदत्रय से निकाला (जैसे दूध से मक्खन) और भूः, भुवः, स्वः को भी।

जो प्रमाण ऐतरेय ब्राह्मण ५।३२॥ का ऊपर दिया गया है, उसका भी यही भाव है।

आप्टे के कोष में भी इस विषय में लिखा है—

The letter 'a' is vaisvanar the spirit of waking souls in the waking world, U is Taijas the spirit Of dreaming souls in the world of dreams and m is Prajna the spirit of sleeping and undreaming souls.'

अर्थात् अक्षर 'अ' वैश्वानर है जो कि सृष्टि की जागृत अवस्था में आत्माओं की जागृत अवस्था है। 'उ' तैजस् है, जो सृष्टि की स्वप्नावस्था में आत्माओं की स्वप्नावस्था है और 'म्' प्राज्ञ है, जो कि आत्माओं की सुषुप्तावस्था है।

यहां सृष्टि की तीनों अवस्थाओं को आत्मा की तीनों अवस्थाओं के साथ मिलाया गया है। यह ऊपर दिखाया ही जा चुका है कि इन तीनों अवस्थाओं का ब्रह्म के साथ क्या सम्बन्ध है।

प्रश्नोपनिषद् का पांचवां प्रश्न है कि—

अथ हैवं शैव्यः सत्यकामः पप्रच्छ। स यो ह वै तद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्त-मोंकारमभिध्यायीत कतमं वाव स तेन लोकं जयतीति ॥ १ ॥

अर्थ—अब गार्ग्यकृत प्रश्न का उत्तर सुनने के पश्चात् इन पिप्पलाद ऋषि को शिवि नामक ऋषि के पुत्र सत्यकाम ऋषि ने पूछा कि हे भगवन् गुरो ! मनुष्यों में जो वह प्रसिद्ध तपस्वी जीवन पर्यन्त ओंकार शब्द के वाच्यार्थ ब्रह्म का शब्दादि विषयों से इन्द्रियों की वृत्तियों को जिस ने निवृत्त पिया ऐसा उपासक तदाकार वृत्ति से सम्मुख हुआ चिन्तन करे, वह उस ध्यान से पृथिव्यादि में से किस लोक का निश्चय कर अधिष्ठाता होता है यह मेरा प्रश्न है। इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया है—

तस्मै स होवाच। एतद्वै सत्यकाम परञ्चापरं च ब्रह्म यदोङ्कारस्तस्माद्विद्वानेते-नैवायतनेन कतरमन्वेति ॥ २ ॥

अर्थ—उस सत्यकाम से पिप्पलाद महर्षि बोले कि हे सत्यकाम ! परमार्थ मुक्ति फल प्राप्ति की कामना से जिस की उपासना की हो उस पर और संसारी सुख की कामना से उपासना किया गया अपर ब्रह्म यही है जो ओंकार शब्द अर्थ और दोनों का ज्ञान इनका एक दूसरे में लय करने से 'ओम्' यह ज्ञान है इस से ज्ञानी पुरुष आत्मज्ञान की प्राप्ति के साधन पर अपर उपासना से उपासना के अनुसार (एकतरम्) पर वा अपर फल को अनुकूलता से प्राप्त होता है।

स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते। तमृचो मनुष्यलोकमुपयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानम-नुभवति ॥ ३ ॥

अर्थ—वह ईश्वर का भक्त जो 'ओम्' में पहली मात्रा 'अ' है, उस का अभिध्यान करे, वह उपासक पुरुष उस एकमात्रिक छोटी उपासना से (संवेदितः) सचेत अपने कर्तव्य में उद्योगी ब्रह्म सम्बन्धी ज्ञान के प्रकाश से युक्त हुआ शीघ्र ही पृथिवी पर राज्य आदि सर्वोत्तम सुख भोग की सामग्री से सब प्रकार युक्त होता है। उस उपासक पुरुष को ओंकार की ऋग्वेद रूप एक मात्रा अर्थात् कर्मकाण्ड की उपासना मनुष्यों में सर्वाध्यक्ष होने के सम्बन्ध से यज्ञोपवीत संस्कार से पवित्र प्रतिष्ठित हुए के तुल्य आदर वा मान का हेतु होती है। वह उन मनुष्यों में तप, ब्रह्मचर्य और श्रद्धा से युक्त हुआ परमेश्वर की महिमा का अनुभव करता है, अर्थात् उस के महानन्द-स्वरूप को जान के आप आनन्द भागी होता है।

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते सोमलोकं स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्त्तते ॥ ४ ॥

अर्थ—एक मात्रा के ध्यान के कहने के पश्चात् जो 'अ, उ' इन दो मात्राओं से युक्त ओंकार के वाच्य ब्रह्म का जन्म भर ध्यान करे वह उपासक मरते समय मानस कर्म जिस में मुख्य है उस उपासना रूप यजुर्वेद के अभिप्राय में एकाग्रचित्त हुआ संयुक्त होता है और उस समय की उपासनाओं से सब ओर से मन को खींच कर अन्तरिक्ष में रहने वाले लोकों में उन्नत दशा को प्राप्त होता है, पीछे वह उपासक चन्द्रलोक में मन सम्बन्धी सब सुख देने वाली सामग्री से उत्पन्न होने वाले आनन्द का अनुभव करके पृथिवी पर उच्च अधिकारियों के कुल में फिर जन्म लेता है।

यः पुनरेतत्त्रिमात्रेणैवोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्मस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरुषमीक्षते तदेतौ श्लोकौ भवतः ॥ ५ ॥

अर्थ—फिर जो उपासक 'ओम्' इस तीन मात्रा वाले अविनाशी परमेश्वर के नाम से सब से सूक्ष्म पूर्ण व्याप्त परमात्मा को सम्मुख हो कर तदाकार वृत्ति और योगाभ्यास की रीति से ध्यान करे वह मरण समय में तेज के बढ़ाने वाले शिर नाम स्वर्लोकस्थ प्राण में संयुक्त हुआ अर्थात् भोक्तृरूप पुरुष की शक्ति का आश्रय लिये जैसे सांप पुरानी चमड़ी केंचली से छूट जाता है और निर्मल हो जाता है, वैसे ही वह उपासक अन्तःकरण के मलिन संस्कार से हुई वासना रूप अशुद्ध वृत्ति से छूट कर निर्मल हुआ वह प्राणों के साथ ज्ञान दृष्टि से देखने योग्य ब्रह्म को प्राप्त होता है, तब वह उपासक इस प्रत्यक्ष चेतन शरीरों से सूक्ष्म जो कारण उस से भी सूक्ष्म ब्रह्माण्ड में सोते के तुल्य अवस्थित पूर्ण पुरुष को ज्ञान दृष्टि से देखता है, इसी विषय को कहने वाले अगले दो मन्त्र प्रमाण हैं।

तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योऽन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक्प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः ॥ ६ ॥

अर्थ—एक दूसरी से मिली, एक समय के ध्यान में सब का साथ ही उपयोग हो ऐसी मृत्यु वाली अर्थात् प्रलय के समय जीवात्मा के शरीर रहित होने से प्रयोग नहीं होता, सो प्रयोग न होना ही उन की मृत्यु है। और उपासना में उपयुक्त ओंकार की तीन मात्रा हैं, उन जाग्रत अवस्था में बाहरी, स्वप्न में मध्यम और सुषुप्ति में भीतरी योगाभ्यास सम्बन्धिनी उक्त तीन क्रियाओं में अच्छे प्रकार उपयुक्त मात्राओं में योगाभ्यास के समय में अवस्थित ज्ञान योग में तत्पर योगी, अपने कर्तव्य से चलायमान नहीं होगा।

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं स सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते। तमोंकारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति ॥ ७ ॥

अर्थ—वह योगी विद्वान् ज्ञानी ऋग्वेद के अभिप्रायरूप वाणी से हुई स्तुतियों से इस प्रत्यक्ष मनुष्य लोक को, यजुर्वेद के अभिप्रायरूप मानसकर्मों से चन्द्रमा आदि लोक को, सामवेद के अभिप्राय रूप प्राणायामादि ज्ञान सम्बन्धी कर्मों से जिस को पण्डित विद्वान् लोग ही जानते हैं उस परोक्ष निर्देश न करने योग्य ब्रह्मलोक अर्थात् उस तीनों लोकों को ओंकाररूप शब्द वाच्य अर्थ की उपासनारूप साधन से ही प्राप्त होता है। वह ब्रह्म कैसा है सो कहते हैं, जिस में इन्द्रियों की गति न होने से संकेत नहीं हो सकता, शान्तस्वरूप, अजर मृत्यु रहित और निर्भय है, और जिस से सूक्ष्म वा उत्तम परे कोई नहीं।

प्रश्न—स्वामी जी ने जो ओंकार की व्याख्या की है इन अर्थों के प्रतिपादन करने वाला मन्त्र न ब्राह्मण, न शास्त्र, न पुराण में है।

(ख) दयानन्द ने अपने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि 'ओ३म्' यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है, क्योंकि जो अ, उ, म् तीन अक्षर मिलकर एक 'ओ३म्' समुदाय हुआ, इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आ जाते हैं, जैसे अकार से विराट्, अग्नि और विश्वादि, उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तैजस् आदि, मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है'। स्वामी जी ने इस विषय में कि अकार से विराट्.........वाचक और ग्राहक है, वेद का कोई प्रमाण नहीं दिया, केवल अपनी कपोलकल्पना से इच्छा पूर्वक लेख किया है। अब हम सम्पूर्ण दयानन्दानुयायियों से निवेदन करते हैं कि जो अपने स्वामी को सत्य वक्ता और वेदज्ञ जानें तो वेद में दिखावें कि किस२ श्रुति से अकार से विराट्, अग्नि और विश्वादि, उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तैजस् आदि, और मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञ आदि नामों का ग्रहण किया है।

उत्तर—यह दोनों आक्षेप वास्तव में एक ही हैं, दूसरा आक्षेप पहले का विस्तार मात्र है। दूसरा आक्षेप करने वाला वादी 'ओं' की स्वामी जी कृत व्याख्या के लिये वेद का प्रमाण मांगता है, परन्तु वह यह भूल जाता है कि ऋषि दयानन्द और आर्य समाज के सिद्धान्त के अनुकूल जहां वेद का विरोध न हो वहां अन्य शास्त्र भी प्रमाण होते हैं। वादी ने स्वामी जी की इस व्याख्या के विरोध में कोई वेद मन्त्र उद्धृत नहीं किया। माण्डूक्योपनिषद् का प्रमाण ऊपर दिया जा चुका है, उस में अकार से वैश्वानर का ग्रहण किया गया है, उकार से तैजस् और मकार से प्राज्ञ का ग्रहण किया है। शेष नामों की व्यवस्था इस प्रकार है—

उपनिषद् में वैश्वानर नाम तो आया ही है, वैश्वानर और विश्व एक ही नाम हैं। गौड़पादाचार्य की कारिका, उपनिषद् पर शांकर भाष्य और उस पर आनन्दगिरि की टीका में अनेक स्थलों में वैश्वानर के स्थान पर विश्व नाम आया है—

बहिष्प्रज्ञो विभुर्विश्वो ह्यन्तःप्रज्ञस्तु तैजसः ।
घनप्रज्ञस्तथा प्राज्ञ एक एव त्रिधा स्मृतः ॥ का० २ ॥

इस कारिका में वैश्वानर के स्थान पर 'विश्व' ही आया हैं, आनन्दगिरि की टीका माण्डूक्य की श्रुति ९ पर देखें—

विश्वस्य वैश्वानरस्य जगद्व्याप्तिं श्रुत्यवष्टम्भेन स्पष्टयति ॥

यहां स्पष्ट ही विश्व का अर्थ वैश्वानर बताया गया है । वैश्वानर शब्द अग्नि पर्याय है यह अनेक कोषों में लिखा है, जैसे—शब्द कल्पद्रुम कोष में अग्नि के पर्याय वाची शब्दों में वैश्वानर लिखा है । आप्टे के कोष में लिखा है कि वैश्वानर—an epithet of fire–अग्नि का नाम है ।

विराट् अग्नि का नाम है, इस विषय में देखें ब्राह्मण ग्रन्थ—

विराडग्निः ॥ शत० ६ । २ । २ । ४४ ॥ ९ । १ । १ । ३१ ॥

अतः अकार से अग्नि, विराट् और विश्व सिद्ध हैं ।

उकार से तैजस का ग्रहण ऊपर माण्डूक्योपनिषद् में किया है । शंकर स्वामी अपने माण्डूक्य भाष्य में लिखते हैं—

तैजसो हिरण्यगर्भः ॥ आगमाख्य प्रथम प्रकरण ।

शतपथ में आता है—

प्रजापतिर्वै हिरण्यगर्भः ॥ ६ । २ । २ । ५ ॥

ऐतरेय में—

वायुर्ह्येव प्रजापतिस्तदुक्तमृषिणा पवमानः प्रजापतिः ॥ ४ । २६ ॥

तैत्तिरीय ब्राह्मण में आता है—

तेजो वै वायुः ॥ ३ । २ । ९ । १ ॥

इस से स्पष्ट है कि हिरण्यगर्भ, वायु और तैजस नामों का उकार से ग्रहण होता है ।

मकार से प्राज्ञ का ग्रहण माण्डूक्य में किया गया है । उपनिषद् में उसी स्थल पर कहा गया है कि मकार माङ् धातु का है, अर्थात् जो मापने वाला, न्याय करने वाला वा शासन करने वाला है । न्याय करने वाला और शासन करने वाला ईश वा ईश्वर है । और वैसे भी शासन और न्याय बुद्धि से ही होता है, अतः ईश वा ईश्वर नाम का प्राज्ञ के साथ सम्बन्ध है ।

शतपथ में आता है—

आदित्यो वा ईशानः आदित्यो ह्यस्य सर्वस्येष्टे ॥ ६ । १ । ३ । १७ ॥

इससे स्पष्ट है कि ईशानः और आदित्य पर्यायवाची हैं । वैसे आप्टे के कोष में मकार से

यम और ब्रह्मा का ग्रहण किया गया है। यम को आदित्य भी कहते हैं। और ब्रह्मा को प्रजापति कहते हैं और आदित्य को भी प्रजापति कहते हैं। अतः मकार से आदित्य, ईश्वर और प्राज्ञ का ग्रहण भी स्पष्ट है।

पञ्चदशी में ये नाम इस प्रकार आए हैं—

प्राज्ञस्तत्राभिमानेन तैजसत्वं प्रपद्यते।
हिरण्यगर्भतामीशस्तयोर्व्यष्टिसमष्टिता ॥ १ । २४ ॥
तेजसा विश्वतां याता देवतिर्यङ्नरादयः ॥ १ । २९ ॥

इन श्लोकों में प्राज्ञ, तैजस, हिरण्यगर्भ, ईश और विश्व नाम आए हैं।

इस प्रकार ऋषि दयानन्द की ओंकार की व्याख्या के नौ ही नामों का आधार स्पष्ट रूप से दिखला दिया गया है, इस लिये वादी का आक्षेप सर्वथा निराधार है।

मूल—उस का ऐसा ही वेदादि सत्य शास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान किया है कि प्रकरणानुकूल ये सब नाम परमेश्वर ही के हैं।

प्रश्न—परमेश्वर से भिन्न अर्थों के वाचक विराट् आदि नाम क्यों नहीं ? ब्रह्माण्ड पृथिवी आदि भूत, इन्द्रादि देवता और वैद्यक शास्त्र में शुण्ठ्यादि ओषधियों के भी ये नाम हैं वा नहीं ?

उत्तर—हैं। परन्तु परमात्मा के भी हैं। (पृष्ठ १)

भाष्य—इन्द्र आदि नाम प्रकरणानुसार परमात्मा तथा अन्य पदार्थों के हो जाते हैं—जैसे इन्द्र शब्द के अर्थ भिन्न २ प्रकरणों में सूर्य, आकाश, परमात्मा और जीव आदि होते हैं। यह बात निम्न लिखित प्रमाणों से सिद्ध है—

इन्द्र ह्येतमाचक्षते य एष (सूर्यः) तपति ॥ शत० ४ । ६ । ७ । ११ ॥

अर्थ—इन्द्र इस को कहते हैं जो यह सूर्य तप रहा है।

स यस्स आकाश इन्द्र एव सः ॥ जै० उ० १ । २८ । २ । १ ॥

अर्थ—वह जो आकाश है वह इन्द्र ही है।

तस्मादाहुरिन्द्रो वागिति ॥ शत० ११ । १ । ६ । १८ ॥

अर्थ—इस लिये कहते हैं कि इन्द्र वाणी है।

अयं वा इन्द्रो योऽयं (वातः) पवते ॥ शत० १४ । २ । २ । ६ ॥

अर्थ—यह इन्द्र है जो यह वायु चलता है।

प्राण एव इन्द्रः ॥ शत० १२ । ९ । १ । १४ ॥

अर्थ—प्राण ही इन्द्र है।

हृदयमेवेन्द्रः ॥ शत० १२ । ९ । १ । १५ ॥

अर्थ—हृदय ही इन्द्र है।

स्तनयित्नुरेवेन्द्रः ॥ शत० ११ । ६ । ३ । ९ ॥

अर्थ—बिजली ही इन्द्र है।

वीर्यं वा इन्द्रः ॥ तां० ९। ७। ५। ८॥

अर्थ—पराक्रम इन्द्र है।

इन्द्रो वा अश्वः ॥ कौ० १५। ४॥

अर्थ—इन्द्र अश्व है।

तस्मादाह इन्द्रो ब्रह्मेति ॥ कौ० ६। १२॥

अर्थ—इस लिये कहा है कि इन्द्र ब्रह्म है।

मायावादी शंकर स्वामी भी इन्द्र शब्द का अर्थ कोई पौराणिक देवता इन्द्र नहीं करते। वह भी बृहदारण्यकोपनिषद् के

इन्द्रो मामाभिः पुरुरूप ईयते ॥ बृह० २। ५। १९।

इस वाक्य पर भाष्य करते हुए इन्द्र शब्द का अर्थ करते हैं—

इन्द्रः परमेश्वरः॥

अर्थात् इन्द्र शब्द परमेश्वर पर्याय है।

महर्षि व्यास अपने शारीरिक मीमांसा सूत्रों में आकाश और प्राण आदि नामों को भी परमात्मा के नाम मानते हैं—

आकाशस्तल्लिङ्गात् ॥ वेदान्त० ॥ १। १। २२॥

अत एव प्राणः ॥ वेदान्त० १। १। २३॥

इन सूत्रों के अर्थों में शंकर, भास्कर आदि भाष्यकारों ने स्वीकार किया है कि आकाश और प्राण शब्द परमात्मा के वाचक हैं। शंकर स्वामी ने तो स्वीकार ही नहीं किन्तु युक्ति प्रमाणों से सिद्ध भी किया है कि यह दोनों परमात्मा के वाचक हैं।

उपनिषदों का विषय भौतिक यज्ञ का प्रतिपादन करना ही नहीं है प्रत्युत उन का प्रधान विषय अध्यात्मवाद है, इस लिये उन ग्रन्थों में "अग्ने नय सुपथा राये" इत्यादि मन्त्र गत अग्नि आदि शब्दों का अर्थ परमात्मा ही संगत हो सकता है।

अग्नि आदि शब्दों का अर्थ परमात्मा कैसे है इसकी व्याख्या ऋग्वेद भाष्य में प्रथम मन्त्र के व्याख्यान में ऋषि ने स्वयं विस्तार से कर दी है। प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में इन्द्र, सविता, वायु आदि परमात्मा के भी पर्याय हैं। सविता का अर्थ ब्रह्म न मान कर सूर्य में व्यापक ब्रह्म मानते हुए सूर्य की उपासना का विधान करना आधुनिक लोगों की कल्पना मात्र है, इस के लिये कोई प्राचीन शास्त्रीय आधार नहीं है।

अथ मन्त्रार्थः

मूल—ओ३म् खं ब्रह्म ॥ १ ॥ यजु० अ० ४० । मं० १७ ॥

देखिये वेदों में ऐसे प्रकरणों में 'ओम्' आदि परमेश्वर के नाम आते हैं।

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत् ॥२॥ छान्दो० उ० मं० १ ॥

ओमित्येतदक्षरमिदꣳसर्वं तस्योपव्याख्यानम् ॥३॥ मांडू० मं० १॥

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाꣳसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥४॥

कठोप० २ । १५ ॥

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि ।

रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम् ॥ ५ ॥

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ।

इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥६॥ मनु० १२।१२२,१२३॥

स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रस्स शिवस्सोऽक्षरस्य परमः स्वराट् ।

स इन्द्रस्स कालाग्निस्स चन्द्रमाः ॥ ७ ॥ कैवल्य० उ०

भाष्य—कैवल्योपनिषद् के इस प्रमाण के विषय में एक महाशय का आक्षेप है।

प्रश्न—स्वामी जी तो दस उपनिषदों को प्रामाणिक मानते हैं, यह कैवल्योपनिषद् का प्रमाण क्यों दिया है ?

उत्तर—स्वामी जी जिन ग्रन्थों को प्रामाणिक नहीं मानते, उन का यह तात्पर्य नहीं कि उन में अच्छी बात एक भी नहीं, स्वामी जी यह मानते हैं कि उन में अच्छी बातें कम हैं और मिथ्या बातें बहुत हैं। यह अच्छी बात है और वेद से विरुद्ध नहीं, इस लिये कैवल्योपनिषद् से ले ली, इस में क्या बुराई है? दूसरे यह कि यदि स्वामी जी इस को प्रमाण नहीं मानते तो आप लोग तो मानते हैं, इस लिये यदि आप के प्रामाणिक ग्रंन्थों से स्वामी जी ने अपने पक्ष की बात दिखा दी तो इस से यह सिद्ध हुआ कि उन की पोज़ीशन अधिक पुष्ट है।

इसी प्रमाण पर दूसरा आक्षेप यह उठाया जाता है—

प्रश्न—यह पाठ सत्यार्थप्रकाश में अशुद्ध है, स्वामी जी ने स्वयं पाठ में परिवर्तन कर दिया है, वास्तविक पाठ मुद्रित उपनिषद् में यह है—

स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट् ।

स एव विष्णुः स प्राणः स कालाग्निः स चन्द्रमा ॥

उत्तर—यह तो एक साधारण सी उपनिषद् है, बड़े २ प्रामाणिक ग्रन्थों के पाठों में भेद पाए जाते हैं, जैसे शंकराचार्य वेदान्त १ । ३ । ३० के भाष्य में मनुस्मृति को उद्धृत करते हैं—

तेषां ये यानि कर्माणि प्राक् सृष्ट्या प्रतिपेदिरे।
तान्येव ते प्रपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः॥
हिंस्रा हिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते।
तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते॥

यह पाठ बंगाल एशियाटिक सोसायटी की ओर से मुद्रित भाष्य में छपा है।

अब निर्णय सागर यन्त्रालय में मुद्रित मनुस्मृति में पाठ देखें—

यं तु कर्माणि यस्मिन् स न्ययुङ्क्त प्रथमं प्रभुः।
स तदेव स्वयं भेजे सृज्यमानः पुनः पुनः॥
हिंस्रा हिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते।
यद्यस्य सोऽदधात् सर्गे तत्तस्य स्वयमाविशत्॥ मनु० १। २८, २९॥

इन दोनों पाठों में स्पष्ट ही बड़ा भारी भेद है। अब क्या इस पाठभेद को देख कर कहा जा सकता है कि शंकर स्वामी ने पाठ अशुद्ध लिख दिया है, वा स्वयं जान बूझ कर पाठ में परिवर्तन कर दिया है? सर्वथा नहीं। शंकर स्वामी का पाठ परिवर्तन करने में कोई स्वार्थ नहीं था। वास्तव में बात यह है कि जो मनुस्मृति शंकर स्वामी को मिली होगी उस में अवश्य वही पाठ होगा जो कि उन्हों ने अपने ग्रन्थ में उद्धृत किया है। और निर्णय सागर यन्त्रालय वालों को जो हस्तलिखित प्रति ग्रन्थ छापने के लिये मिली उस में ऐसा ही पाठ होगा जैसा उन्हों ने छापा है। ठीक इसी प्रकार से श्री स्वामी दयानन्दजी का पाठ परिवर्तन करने में कोई स्वार्थ नहीं था। जो पाठ मुद्रित उपनिषद् से वादी ने उपस्थित किया है वह भी उन की पोज़ीशन को उतना ही पुष्ट करता है जितना वह पाठ जो स्वामी जी ने उद्धृत किया हुआ है। वास्तविक बात यही है कि कैवल्योपनिषद् की जो प्रति श्री स्वामी जी महाराज को मिली उस में अवश्य यही पाठ होगा जो उन्हों ने सत्यार्थ प्रकाश में उद्धृत किया है।

मूल—इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥ ८॥
ऋ० मं० १। सू० १६४। मं० ४६॥

भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री।
पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृꣳह पृथिवीं मा हिꣳसीः॥९॥ यजु० १३।१८
इन्द्रो महा रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत्।
इन्द्रेह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे स्वानास इन्दवः॥१०॥
सामवे...

तेषां ये यानि कर्माणि प्राक् सृष्ट्या प्रतिपेदिरे।
तान्येव ते प्रपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः॥
हिंस्रा हिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते।
तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते॥

यह पाठ बंगाल एशियाटिक सोसायटी की ओर से मुद्रित भाष्य में छपा है।

अब निर्णय सागर यन्त्रालय में मुद्रित मनुस्मृति में पाठ देखें—

यं तु कर्माणि यस्मिन् स न्ययुङ्क्त प्रथमं प्रभुः।
स तदेव स्वयं भेजे सृज्यमानः पुनः पुनः॥
हिंस्रा हिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते।
यद्यस्य सोऽदधात् सर्गे तत्तस्य स्वयमाविशन्॥ मनु० १। २८, २९॥

इन दोनों पाठों में स्पष्ट ही बड़ा भारी भेद है। अब क्या इस पाठभेद को देख कर कहा जा सकता है कि शंकर स्वामी ने पाठ अशुद्ध लिख दिया है, वा स्वयं जान बूझ कर पाठ में परिवर्तन कर दिया है? सर्वथा नहीं। शंकर स्वामी का पाठ परिवर्तन करने में कोई स्वार्थ नहीं था। वास्तव में बात यह है कि जो मनुस्मृति शंकर स्वामी को मिली होगी उस में अवश्य वही पाठ होगा जो कि उन्हों ने अपने ग्रन्थ में उद्धृत किया है। और निर्णय सागर यन्त्रालय वालों को जो हस्तलिखित प्रति ग्रन्थ छापने के लिये मिली उस में ऐसा ही पाठ होगा जैसा उन्हों ने छापा है। ठीक इसी प्रकार से श्री स्वामी दयानन्दजी का पाठ परिवर्तन करने में कोई स्वार्थ नहीं था। जो पाठ मुद्रित उपनिषद् से वादी ने उपस्थित किया है वह भी उन की पोज़ीशन को उतना ही पुष्ट करता है जितना वह पाठ जो स्वामी जी ने उद्धृत किया हुआ है। वास्तविक बात यही है कि कैवल्योपनिषद् की जो प्रति श्री स्वामी जी महाराज को मिली उस में अवश्य यही पाठ होगा जो उन्हों ने सत्यार्थ प्रकाश में उद्धृत किया है।

मूल—इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यस्स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥ ८॥
ऋ० मं० १। सू० १६४। मं० ४६॥

भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री।
पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृंह पृथिवीं मा हिंसीः॥९॥ यजु० १३।१८॥
इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत्।
इन्द्रेह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे स्वानास इन्दवः॥१०॥
सामवेद ७। प्र० ३। अ० ८। सू० १६॥ अ० २। खं० ३। सू० २। मं० ८

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे ।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ११ ॥
अथर्व० कां० ११ । सू० ४ । मं० १ ॥ (पृष्ठ १)

भाष्य—ऊपर के प्रमाणों में से जिन का अर्थ ऋषि ने नहीं किया उन का सरल अर्थ दिया जाता है—

सर्व व्यापक और सब से बड़ा परमात्मा ॥ १ ॥ यजु० ४० । १७ ॥

कभी नष्ट न होने वाले उद्गीथ परमात्मा की उपासना करे ॥२॥ छा० १ ॥

'ओं' परमात्मा अक्षर अर्थात् नाश न होने वाला है, यह सब कुछ उसी का विस्तार किया हुआ है ॥ ३ ॥

चौथे और पाचवें के अर्थ ऋषि ने स्वयं कर दिये हैं ।

उस को कई अग्नि कहते हैं, कोई मनु, कई प्रजापति, कोई इन्द्र, कोई प्राण और कोई नित्य ब्रह्म पुकारते हैं ॥६॥

वह ब्रह्मा है, वह विष्णु है, वह रुद्र है, वह शिव है, वह अविनश्वर, प्रकाशस्वरूप, वह इन्द्र, वह कालाग्नि और वह चन्द्रमा है ॥ ७ ॥

प्रकाशस्वरूप परमात्मा जो कि एक है तब भी उस को विद्वान् लोग बहुत प्रकार से इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, और दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान्, यम, मातरिश्वा नामों से बुलाते हैं ॥ ८ ॥

तू भू है, भूमि है, अदिति है, सारे ब्रह्माण्ड के व्यवहारों और सारे ब्रह्माण्ड को धारण करने वाली है, तू पृथिवी (पृथिवीस्थ प्राणियों) का ग्रहण कर पृथिवी (पृथिवीस्थ प्राणियों) की उन्नति कर और पृथिवी (पृथिवीस्थ जीवों) को हानि मत पहुंचा ॥ ९ ॥

इन्द्र (परमैश्वर्यवान् परमेश्वर) अपने बल की महिमा से द्यावापृथिवी का विस्तार करता है, इन्द्र सूर्य को प्रकाशित करता है, सब भुवन इन्द्र के वश में हैं, सब विद्वान् इन्द्र के ही वश मे रहते हुए देखे जाते हैं ॥ १० ॥

प्राणप्रिय परमात्मा को नमस्कार हो जिस के यह सब कुछ वश में है, जो सब का शासक है और जिस के आश्रित सब कुछ है ॥ ११ ॥

मूल—अर्थ—यहां इन प्रमाणों के लिखने में तात्पर्य यही है कि जो ऐसे २ प्रमाणों में ओङ्कारादि नामों से परमात्मा का ग्रहण होता है, यह लिख आये, तथा परमेश्वर का कोई भी नाम अनर्थक नहीं, जैसे लोक में दरिद्री आदि के धनपति आदि नाम होते हैं । इस से सिद्ध हुआ कि कहीं गौणिक, कहीं कार्मिक और कहीं स्वाभाविक अर्थों के वाचक हैं ।

"ओ३म्" आदि नाम सार्थक हैं, जैसे (ओ३म् खं०)-"अवतीत्योम्, आकाशमिव व्यापकत्वात् खम्, सर्वेभ्यो बृहत्वाद् ब्रह्म" ।

रक्षा करने से " **ओम्** "।

आकाश वत् व्यापक होने से " **खम्** "। सब से बड़ा होने से " **ब्रह्म** " ईश्वर का नाम है ॥ १ ॥

(ओम्) जिस का नाम है और जो कभी नष्ट नहीं होता, उसी की उपासना करनी योग्य है ॥२॥

(ओमित्येत०) सब वेदादि शास्त्रों में परमेश्वर का प्रधान और निज नाम ' **ओम्** ' को कहा है, अन्य सब गौणिक नाम हैं ॥ ३ ॥

(सर्वे वेदा०) क्योंकि सब वेद, सब धर्मानुष्ठानरूप तपश्चरण जिस का कथन और मान्य करते और जिस की प्राप्ति की इच्छा कर के ब्रह्मचर्याश्रम करते हैं, उस का नाम **"ओ३म्"** है ॥ ४ ॥

(प्रशासिता०) जो सब को शिक्षा देने हारा, सूक्ष्म से सूक्ष्म, स्वप्रकाशस्वरूप, समाधिस्थ बुद्धि से जानने योग्य है, उस को परम पुरुष जानना चाहिये ॥ ५ ॥

स्वप्रकाशस्वरूप होने से " **अग्नि,** " विज्ञानस्वरूप होने से " **मनु,** ", सब का पालन करने से " **प्रजापति** " और परमैश्वर्यवान् होने से " **इन्द्र,** "सब का जीवनमूल होने से **"प्राण"** और निरन्तर व्यापक होने से परमेश्वर का नाम " **ब्रह्म** है ॥ ६ ॥

(स ब्रह्मा स विष्णुः०) सब जगत् के बनाने से " **ब्रह्मा** " सर्वत्र व्यापक होने से " **विष्णु** ", दुष्टों को दण्ड दे के रुलाने से " **रुद्र,** " मङ्गलमय और सब का कल्याणकर्त्ता होने से " **शिव** "। "यः सर्वमश्नुते, न क्षरति, न विनश्यति तदक्षरम् " " यः स्वयं राजते स स्वराट् "। " योऽग्निरिव कालः कलयिता प्रलयकर्त्ता स कालाग्निरीश्वरः "। (**अक्षर**) जो सर्वत्र व्याप्त अविनाशी, (**स्वराट्**) स्वयं प्रकाशस्वरूप और (**कालाग्नि**) प्रलय में सब का काल और काल का भी काल है, इस लिए परमेश्वर का नाम **कालाग्नि** है ॥ ७ ॥

(इन्द्रं मित्रं) जो एक अद्वितीय सत्य ब्रह्म वस्तु है, उसी के इन्द्र आदि सब नाम हैं। " द्युषु शुद्धेषु पदार्थेषु भवः दिव्यः "। " यो गुर्वात्मा स गरुत्मान् । " यो मातरिश्वा वायुरिव बलवान् स मातरिश्वा "। **दिव्य**—जो प्रकृत्यादि दिव्य पदार्थों में व्याप्त, **सुपर्ण**—जिस के उत्तम पालन और पूर्ण कर्म हैं। **गरुत्मान्**—जिस का आत्मा अर्थात् स्वरूप महान् है। **मातरिश्वा**—जो वायु के समान अनन्त बलवान् है। इस लिए परमात्मा के **दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान्** और **मातरिश्वा** ये नाम हैं। शेष नामों का अर्थ आगे लिखेंगे ॥ ८ ॥ (पृष्ठ ३)

भाष्य—सुपर्ण परमात्मा का नाम है, इस विषय में और प्रमाण—

सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति ।
छन्दांसि च दधतो अध्वरेषु ग्रहान्त्सोमस्य मिमते द्वादश ॥

ऋ० १० । ११४ । ५ ॥

इस मन्त्र पर सायण भाष्य—

विप्रा मेधाविनः कवयः क्रान्तप्रज्ञा मनुष्यः सुपर्णं सुपतनमेकं सन्तं परमात्मानं वचोभिः स्तुतिलक्षणैर्वचनैर्बहुधा बहुप्रकारं कल्पयन्ति कुर्वन्ति, किंच त

एव कवयोऽध्वरेषु यज्ञेषु छन्दांसि गायत्र्यादीनि सप्त छन्दांसि दधतः धारयन्तो द्वादश संख्याकान् सोमस्य ग्रहान् ग्रहणसाधनानि पात्राण्युपांश्वन्तर्यामादीनि मिमते निर्मिमते ॥

अर्थात् मेधावी क्रान्तदर्शी मनुष्य सुपर्ण परमात्मा को स्तुति वचनों से बहुत प्रकार से बुलाते हैं। वे ही कवि यज्ञों में गायत्री आदि सात छन्दों को धारण करते हुए सोम के १२ ग्रहों अर्थात् ग्रहण के साधन पात्रादिकों का निर्माण करते हैं।

सायण ने सुपर्ण शब्द को परमात्मा वाचक स्वीकार किया है। सुपर्ण नाम परमात्मा का स्वीकार करने पर इस मन्त्रगत शेष नाम भी परमात्मा के ही स्वीकार करने पड़ते हैं।

इन्द्रं मित्रमादि मन्त्र का अर्थ श्री स्वामी जी महाराज ने ऊपर किया है उस में "एक अद्वितीय सत्य ब्रह्म" यह शब्द लिख कर वैदिक एकेश्वरवाद का संकेत किया है। इस पर डाक्टर ग्रिस्वोल्ड (Dr. Griswold) निम्नलिखित आक्षेप करते हैं—

प्रश्न—"*Swami Dayananda Saraswti's theory of Monotheism in the Rigveda.* Taking his case from the late passages R. V. I. 164.46 and X. 114. 5. the fouuder of the Arya Samaj held that all the gods mentioned *in the Rigveda are simply variant names for one God.* This process of reduction from multiplicity to unity would have been easier,if there had beeen no dual gods or group gods, mentioned in the R. V..........The monotheistic interpretation of the Rigveda involved on the part of Swami Dayananda much wild and unscientific exegesis..............." Religion of the Rigveda. Pages 109, 110.

अर्थात्—"स्वामी दयानन्द सरस्वती का ऋग्वेदीय एकेश्वरवाद— आर्यसमाज के प्रवर्तक ने ऋग्वेद के पीछे के बने हुए स्थल ऋग्० १। १६४। ४६ और १०। ११४। ५॥ को आधार बना कर यह वाद खड़ा किया कि ऋग्वेद में आए हुए सब देवता एक परमात्मा के ही भिन्न २ नाम हैं। यह बहुत्व से कम करते २ एकत्व पर पहुंचने का ढङ्ग सरल होता, यदि ऋग्वेद में द्वित्वदेवता या गणदेवता न होते। ऋग्वेद का एकेश्वरवादीय अर्थ करने में स्वामी दयानन्द को बहुत सी अप्रासङ्गिक और विज्ञानशून्य खैञ्चातानी करनी पड़ी है"। रिलिजन आफ़ दी ऋग्वेद, पृष्ठ १०९,११० ॥

उत्तर—डाक्टर ग्रिस्वोल्ड ने श्री स्वामी जी महाराज के पक्ष को बिना समझे ही आक्षेप कर दिया है। महर्षि दयानन्द सरस्वती का यह सिद्धान्त ही नहीं कि सब देवता वेदों में सब स्थलों पर परमात्मा के ही वाचक हैं, और न ही ऋषि ने अपने वेद भाष्य में ऐसे अर्थ करने का यत्न किया है। महर्षि इस विषय में स्वयं लिखते हैं—

"ओ३म् यह तो केवल परमात्मा ही का नाम है और अग्नि आदि नामों से परमेश्वर के ग्रहण में प्रकरण और विशेषण नियमकारक है । इस से क्या सिद्ध हुआ कि जहां २ स्तुति, प्रार्थना, उपासना, सर्वज्ञ, व्यापक, शुद्ध, सनातन और सृष्टिकर्त्ता आदि विशेषण लिखे हैं, वहीं २ इन नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता है............ऐसे प्रमाणों में विराट्, पुरुष, देव, आकाश, वायु, अग्नि, जल, भूमि आदि नाम लौकिक पदार्थों के होते हैं, क्योंकि जहां २ उत्पत्ति स्थिति, प्रलय, जड़, दृश्य आदि विशेषण भी लिखे हों, वहां २ परमेश्वर का ग्रहण नहीं होता"। सत्यार्थप्रकाश प्रथम समुल्लास। (पृष्ठ ३)

ऊपर के शब्दों से ऋषि का पक्ष इतना स्पष्ट हो जाता है कि डाक्टर ग्रिस्वोल्ड के आक्षेप के लिये कोई स्थान रहता ही नहीं, इस पक्ष से यह भी स्पष्ट हो गया कि स्वामी दयानन्द सरस्वती को किसी प्रकार की खैंचातानी करने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि उनका यह पक्ष ही नहीं कि प्रत्येक देवता सब स्थलों पर ईश्वर वाची है। इसलिये (Dual gods) द्वित्व देवता और गण देवताओं के प्रकरणानुसार और अर्थ हो जायेंगे। हम अपने उत्तर को संक्षिप्त करने के लिये एक उदाहरण (Dual gods) द्वित्वदेवताओं का लेंगे और एक (Group gods) गणदेवताओं का लेंगे।

ऋग्वेद १।१०८। सारे सूक्त का देवता इन्द्राग्नि है भिन्न २ मन्त्रों में ऋषि ने भिन्न २ अर्थ किये हैं—

इस सूक्त के १, २, ३, मन्त्र में इन्द्राग्नि का अर्थ ऋषि ने 'वायुपावकौ' अर्थात् वायु और अग्नि किया है।

४, ११, १२ मन्त्र में वायु और विद्युत अर्थ किया है।

५, ७ और ८ मन्त्र में स्वामी और भृत्य अर्थ किया है।

मन्त्र ६ में स्वामी और शिल्पी अर्थ किया है।

मन्त्र ९ और १० में न्यायाधीश और सेनाध्यक्ष अर्थ किया है।

मन्त्र १३ में परम धनाढ्य और युद्ध विद्या प्रवीण अर्थ किया है।

अर्थात् इस सूक्त के १३ मन्त्रों में से ३ मन्त्रों में वायु और अग्नि, ३ मन्त्रों में वायु और विद्युत, ३ मन्त्रों में स्वामी और भृत्य, १ मन्त्र में स्वामी और शिल्पी, २ मन्त्रों में न्यायाधीश और सेनाध्यक्ष और एक मन्त्र में परम धनाढ्य और युद्धविद्या प्रवीण अर्थ किया है, परमात्मा अर्थ एक भी मन्त्र में नहीं किया।

ऋग्वेद १।११०॥ के देवता ऋभु हैं—(Group gods अर्थात् गणदेवता)।

इस सूक्त में ऋभु का अर्थ मेधावी, सूर्य की किरणें और बहुत विद्याओं के प्रकाशक विद्वान् श्री स्वामी जी महाराज ने किये हैं। इस शब्द को परमात्मा वाचक

इस सारे सूक्त के अर्थों में कहीं भी नहीं लिखा * ।

मूल—(भूमिरसि०) " भवन्ति भूतानि यस्यां सा भूमिः " जिस में सब भूत प्राणी होते हैं, इस लिए परमेश्वर का नाम भूमि है । शेष नामों का अर्थ आगे लिखेंगे ॥ ९ ॥ (पृष्ठ ३)

भाष्य—प्रश्न—यदि भूमि परमात्मा का नाम है तो पृथिवी भी परमात्मा का नाम होना चाहिये, तो फिर स्वामी जी के मतानुसार यह अर्थ होगा कि हे ईश्वर ! ईश्वर को मत मार ॥

उत्तर—यह स्वामी जी ने कहां लिखा है कि यदि 'भूमि' का अर्थ यहां परमात्मा है, तो पृथिवी का अर्थ परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता ? भूमि शब्द का अर्थ भी सब स्थलों पर परमात्मा ही हो ऐसा स्वामी जी का सिद्धान्त नहीं है, उन का तो सिद्धान्त ही यही है कि ये सब नाम प्रकरणानुसार परमात्मा के हो जाते हैं, सदा नहीं । इस लिये वादी का यह आक्षेप निराधार है ।

मूल—(इन्द्रो मह्रा०) इस मन्त्र में इन्द्र परमेश्वर ही का नाम है, इस लिए यह प्रमाण लिखा है ॥ १० ॥

(प्राणाय) जैसे प्राण के वश सब शरीर और इन्द्रियां होती हैं, वैसे परमेश्वर के वश में सब जगत् रहता है ॥ ११ ॥ (पृष्ठ ३)

भाष्य—महर्षि ने परमात्मा के १०० नाम नमूने के रूप से दिए हैं, उन नामों की व्याकरण द्वारा सिद्धि की है । ये नाम प्रायः और विद्वानों ने भी स्वीकार किये हैं । इन में से बहुत से नाम वेद में पाए जाते हैं, कई नाम आर्ष ग्रन्थों में पाए जाते हैं और कई नाम पौराणिक ग्रन्थों में मिलते हैं । चाहे पौराणिक ग्रन्थ आर्य समाज के लिये प्रामाणिक नहीं हैं, परन्तु यदि उन में से यह दिखा दिया जाए कि ऋषि दयानन्द के बताए हुए नाम वहा भी विद्यमान हैं तो क्योंकि सनातनधर्मी भाई उन ग्रन्थों को प्रामाणिक मानते हैं और इस समुल्लास पर आक्षेप भी प्रायः उन्हीं भाईयों ने किये हैं, इस लिये इन प्रमाणों से उन का पूरा सन्तोष हो जायगा और विपक्षियों के ग्रन्थों से स्वामी जी का पक्ष सिद्ध होने से वह अधिक पुष्ट होगा ।

परमात्मा के नाम चाहे किसी भी आस्तिक विद्वान् के ग्रन्थ से, जो महर्षि से पहले हो चुका हो, दिखा देना उन के पक्ष की पुष्टि के लिये पर्याप्त है । ऊपर जो नाम आए हैं, उन के आधार स्वरूप प्रमाण भी ऋषि ने स्वयं दे दिए हैं । उन में से कुछ नामों का निर्वचन आगे आएगा, उन की पुष्टि में और प्रमाण भी आगे ही दिए जाएंगे, परन्तु ऐसे नाम जिन की निरुक्ति आगे नहीं आनी उन के विषय में प्रमाण नीचे दिए जाते हैं—

---

* प्रार्थना उपासना आदि के प्रकरणों में गण देवता और द्वित्वदेवता परमात्मा की शक्तियां हैं -ऐसा अर्थ भी ऋषि वर ने कुछ स्थलों पर किया है, इस में कोई खेंचातानी नहीं है । (भाष्यकार)

ख—'क' नाम प्रजापति परमात्मा का ब्राह्मण ग्रन्थों में आता है। उपनिषद् में आया है—

यद्वाव कं तदेव खम् ॥ छां० ४ । १० । ५ ॥

अर्थ—जो 'क' है वही 'ख' है।

प्राणो ब्रह्म कं ब्रह्म खं ब्रह्म ॥ छां०

अर्थ—प्राण ब्रह्म है, क ब्रह्म है, ख ब्रह्म है।

त्वमन्नस्त्वं यमस्त्वं पृथिवी त्वं विश्वं खमथाच्युतः ॥ मैत्र्यु० ५ । १ ॥

अर्थ—तू अन्न है, तू यम है, तू पृथिवी है, तू विश्व है, तू ख है और तू अच्युत है।

प्रजापति—

ब्रह्म वै प्रजापतिः ॥ शत० १३ । ६ । २ । ८ ॥

अर्थ—ब्रह्म प्रजापति है।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमा ।

तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥ यजु० ३२ । १ ॥

अर्थ—वही अग्नि है, वह आदित्य है, वह वायु है, और वह चन्द्रमा है, वह ही शुक्र है, वह ब्रह्म है, वह आप है वह प्रजापति है।

दिवो धर्त्ता भुवनस्य प्रजापतिः पिशंगं द्रापिं प्रतिमुञ्चते कवि।

विचक्षणः प्रथयन्नापृणन्नुर्वजीजनत्सविता सुम्नमुक्थ्यम् ॥ ऋ० ४।५३।२ ॥

इस मन्त्र में सारे भुवन के धारण और पालन करने वाले को प्रजापति कहा है। सायण का भी ऐसा ही आशय है।

प्राण—प्राणः प्रजापतिः ॥ शत० ६ । ३ । १ । ९ ॥

अर्थ—प्राण प्रजापति है।

प्राणो वै ब्रह्म ॥ शत० १४ । ६ । १० । २ ॥

अर्थ—प्राण ब्रह्म है।

प्राण शब्द ईश्वर वाचक है ऐसा शंकर स्वामी ने भी वेदान्त के सूत्र—

अत एव प्राणः ॥ १ । १ । २३ ॥

पर भाष्य करते हुए लिखा है—

ब्रह्म विषयः प्राणशब्दो दृश्यते । प्राणशब्दं ब्रह्मैव ।

अर्थात् प्राण शब्द ब्रह्म विषयक देखने में आता है। प्राण शब्द ब्रह्म ही है।

इसी प्रकार "प्राणस्तथानुगमात्" ॥ १ । १ । २८ ॥ पर शंकर स्वामी ने लिखा है—प्राणशब्दं ब्रह्म विज्ञेयम् । और "प्राणो ब्रह्म"

अर्थात् प्राण शब्द से ब्रह्म जानना चाहिये।

इन सूत्रों पर भामती और रत्नप्रभा आदि टीकाओं में भी यही बात स्वीकार की गई है।

वृहदारण्यक में आता है—

प्राणस्य प्राणम् ॥ ४ । ४ । १८ ॥

अर्थात् वह प्राण का भी प्राण है।

सुपर्ण—इस विषय में ऊपर ऋग्वेद के १०वें मण्डल का एक प्रमाण दिया जा चुका है। इसी विषय में शतपथ में आता है—

पुरुषः सुपर्णः ॥ शत० ७ । ४ । २ । ५ ॥

अर्थ—सुपर्ण पुरुष है।

गरुत्मान्—प्रजापतिर्वै सुपर्णो गरुत्मान् ॥ शत १० । २ । २ । ४ ॥

प्रजापति सुपर्ण गरुत्मान् है।

सुपर्ण और गरुत्मान् इन दोनों के विषय में एक बड़ा स्पष्ट प्रमाण है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ॥ऋ १।१६४।४६॥

इस मन्त्र पर आत्मानन्द जो कि १४वीं शताब्दी विक्रम का भाष्यकार है, भाष्य करता हुआ लिखता है—

एकैव देवता परमात्मा सर्वदेवता । एकस्यैव नाना नाम ग्रहणीत्युच्यते... स परेशो गरुत्मान् सुपर्ण इत्याहुः ।

एक ही देवता परमात्मा सर्वदेवता है, उस एक के ही नाना नाम हैं.........वह परमेश्वर गरुत्मान् सुपर्ण है।

मूल—इत्यादि प्रमाणों के ठीक २ अर्थों के जानने से इन नामों करके परमेश्वर ही का ग्रहण होता है। क्योंकि ओ३म् और अग्न्ययादि नामों के मुख्य अर्थ से परमेश्वर ही का ग्रहण होता है। जैसा कि व्याकरण, निरुक्त, ब्राह्मण, सूत्रादि ऋषि मुनियों के व्याख्यानों से परमेश्वर का ग्रहण देखने में आता है वैसा ग्रहण करना सब को योग्य है परन्तु "ओ३म्" यह तो केवल परमात्मा ही का नाम है और अग्नि आदि नामों से परमेश्वर के ग्रहण में प्रकरण और विशेषण नियमकारक है। इस से क्या सिद्ध हुआ कि जहां २ स्तुति, प्रार्थना, उपासना, सर्वज्ञ, व्यापक, शुद्ध, सनातन और सृष्टिकर्त्ता आदि विशेषण लिखे हैं वहीं वहीं इन नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता है और जहां २ ऐसे प्रकरण हैं कि—(पृष्ठ ३)

ततो॑ वि॒राड॑जायत वि॒राजो॒ अधि॒ पूरु॑षः ॥ यजु० ३१ । ५ ॥

श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥ यजु० ३१ । १२ ॥
तेन देवा अयजन्त ॥ यजु० ३१ । ९ ॥
पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ यजु: अ० ३१ । ५ ॥

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः । अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी । पृथिव्या ओषधयः । ओषधिभ्योऽन्नम् । अन्नाद्रेतः । रेतसः पुरुषः । स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः ॥ [ब्रह्मा० वल्ली अ० १]

यह तैत्तिरीयोपनिषद् का वचन है । ऐसे प्रमाणों में विराट्, पुरुष, देव, आकाश, वायु, अग्नि, जल, भूमि आदि नाम लौकिक पदार्थों के होते हैं । क्योंकि जहां २ उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, अल्पज्ञ, जड़, दृश्य आदि विशेषण भी लिखे हों वहां २ परमेश्वर का ग्रहण नहीं होता । वह उत्पत्ति आदि व्यवहारों से पृथक् है और उपरोक्त मन्त्रों में उत्पत्ति आदि व्यवहार हैं । इसी से यहां विराट् आदि नामों से परमात्मा का ग्रहण न होके संसारी पदार्थों का ग्रहण होता है । किन्तु जहां २ सर्वज्ञादि विशेषण हों वहां २ परमात्मा और जहां २ इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और अल्पज्ञादि विशेषण हों वहां २ जीव का ग्रहण होता है । ऐसा सर्वत्र समझना चाहिये । क्योंकि परमेश्वर का जन्म मरण कभी नहीं होता इस से विराट् आदि नाम और जन्मादि विशेषणों से जगत् के जड़ और जीवादि पदार्थों का ग्रहण करना उचित है परमेश्वर का नहीं । (पृष्ठ ४)

भाष्य—ऊपर के शब्दों में महर्षि ने एक अमूल्य सिद्धान्त बताया है । इस सिद्धान्त को न समझ कर ही पश्चिमी विद्वान् और उन के भारतीय शिष्य यह कहते हैं कि वेद में जड़ पदार्थों की पूजा है । इसी विषय में ऊपर हम डाक्टर ग्रिस्वोल्ड के एक उद्धरण का खण्डन कर भी चुके हैं । ऋषि के इसी सिद्धान्त को न समझ कर एक और महानुभाव ने एक आक्षेप उठाया है—

प्रश्न—मित्र आदि शब्द देवताओं के वाचक हैं, परमात्मा के नहीं, यह बात वेद से सिद्ध है । स्वामी दयानन्द ने जो लिखा है कि इन शब्दों से परमात्मा का ग्रहण करना चाहिये, यह वेद विरुद्ध है । यजुर्वेद के निम्न लिखित मन्त्रों में इन शब्दों से देवताओं का ग्रहण ही करना पड़ता है—

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः । दुराधर्षं वरुणस्य ॥ यजु० ३।३१॥

अर्थ—(मित्रस्य अर्यम्णः वरुणस्य त्रीणाम्) प्राणवृत्ति और दिवस के अधिष्ठाता देव मित्र, चक्षु वा सूर्य के अधिष्ठात्री अर्यमा देवता, जलों के अधिष्ठात्री देवता वरुण, इन तीनों देवताओं से सम्बन्ध रखने वाली (महि) बड़ी (द्युक्षम्) कान्तिमान् सुवर्ण आदि द्रव्यों से युक्त (दुराधर्षम्) तिरस्कार पाने को अशक्य (अवः) पालना वा रक्षा (अस्तु) हम को प्राप्त हो ।

ते हि पुत्रासो अदितेः प्रजीवसे मर्त्याय । ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥
यजु० ३ । ३३ ॥

अर्थ—ये तीनों देवता अदिति के पुत्र हैं । यजमान को अखण्ड तेज और दीर्घायु देते हैं ।

उत्तर—वादी यह समझता प्रतीत होता है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती के मत में मित्र आदि शब्दों का अर्थ सदा परमात्मा ही होता है, जो कि ठीक नहीं है । स्वामी जी तो स्पष्ट ही लिखते हैं, कि इन शब्दों का अर्थ प्रकरणानुकूल परमात्मा भी हो जाता है, उन के शब्द हैं—

''ओ३म्' यह तो केवल परमात्मा ही का नाम है और अग्नि आदि नामों से परमेश्वर के ग्रहण में प्रकरण और विशेषण नियम कारक हैं इस से क्या सिद्ध हुआ कि जहां २ स्तुति, प्रार्थना, उपासना, सर्वज्ञ, व्यापक, शुद्ध, सनातन और सृष्टि कर्ता आदि विशेषण लिखे हैं, वहीं वहीं इन नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता है' । (पृष्ठ ३)

इस लिये यह कहना कि ऋषि दयानन्द इन नामों से सदा परमेश्वर का ही ग्रहण करते हैं उन के पक्ष को न समझना है । वादी के दिये मन्त्रों का ऋषि दयानन्द निम्न लिखित अर्थ करते हैं—

हे ब्रह्मणस्पते जगदीश्वर आप की कृपा से (मित्रस्य) बाहिर और भीतर रहने वाले प्राण वायु तथा (अर्यम्णः) जो आकर्षण से पृथिवी आदि पदार्थों को धारण करने वाला सूर्य लोक और (वरुणस्य) जल, इन तीनों के प्रकाश से हम लोगों के जिस में नीति का प्रकाश निवास करता है वा (दुराधर्षम्) अति कष्ट से ग्रहण करने योग्य दृढ़ वेद विद्या की रक्षा हो ॥ यजु० ३ । ३१ ॥

जो (अदितेः) नाश रहित कारण रूपी शक्ति के (पुत्रासः) पुत्र हैं, वे ही मनुष्यों के मरने वा जीने के लिये निरन्तर तेज वा प्रकाश को देते हैं ॥ यजु० ३।३३॥

इस विषय में जो ऋषि ने "एतमग्निं वदन्त्येके" आदि मनु० और "इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः" आदि ऋग्वेद के प्रमाण ऊपर दिये हैं, उन से यह बात सुनिश्चित रूप से सिद्ध हो जाती है कि 'अग्नि' आदि परमात्मा के भी वाचक होते हैं । ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका और भ्रान्ति निवारण में ऋषि ने इस विषय को और भी खोला है ।

विराट्—मूल—अब जिस प्रकार विराट् आदि नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता है वह प्रकार नीचे लिखे प्रमाण जानो—अथ ओङ्कारार्थः । (वि) उपसर्गपूर्वक (राजृ दीप्तौ) इस धातु से क्विप् प्रत्यय करने से "विराट्" शब्द सिद्ध होता है । "यो विविधं नाम चराऽचरं जगद्राजयति प्रकाशयति

से विराट् " विविध अर्थात् जो बहु प्रकार के जगत् को प्रकाशित करे इस से **विराट्** नाम से परमेश्वर का ग्रहण होता है। (पृष्ठ ४)

भाष्य—'विराट्' नाम परमात्मा का है इस विषय में ऊपर ओंकार की व्याख्या के प्रकरण में लिखा जा चुका है। वहां माण्डूक्योपनिषद् आदि ग्रन्थों के प्रमाण दिये जा चुके हैं, इस विषय में निम्न लिखित प्रमाण भी द्रष्टव्य हैं—

प्रजापतिर्विराट् चैव ॥ चूलिकोपनिषद् ॥ १३ ॥

अर्थ—प्रजापति विराट् ही है।

यो ब्रह्माण्डस्यान्तर्बहिर्व्याप्नोति विराट् ॥ रामोत्तरतापन्यु० ५ ॥

अर्थ—जो ब्रह्माण्ड के अन्दर और बाहिर व्यापक है वह विराट् है।

अग्नि—मूल—(अञ्चु गतिपूजनयोः) (अग, अगि, इण) गत्यर्थक धातु हैं इन से " अग्नि " शब्द सिद्ध होता है। " गतेस्त्रयोऽर्थाः ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति, पूजनं नाम सत्कारः " " योऽञ्चति अच्यतेऽगत्यङ्गत्येति वा सोऽय"मग्निः" जो ज्ञानस्वरूप, सर्वज्ञ, जानने, प्राप्त होने और पूजा करने योग्य है इस से उस परमेश्वर का नाम " अग्नि " है (पृष्ठ ४)

भाष्य—अग्नि परमात्मा का नाम हैं इस विषय में ऋषि ने स्वयं वेद और मनु स्मृति के बड़े स्पष्ट प्रमाण दे दिए हैं। ओंकार की व्याख्या में भी हम ने इस नाम के विषय में लिख दिया है। निम्न लिखित प्रमाणों से यह विषय और भी पुष्ट होता है—

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमा ॥ यजु० ३२ । १ ॥

अर्थ—वह ही अग्नि है, वह आदित्य है, वह वायु है, और वह चन्द्रमा है।

शतपथ ब्राह्मण में आता है—

अग्निरेव ब्रह्म ॥ शब० १० । ४ । १ । ५ ॥

अर्थ—अग्नि ही ब्रह्म है।

ऋग्वेद १ । १६४ । ४६ । पर भाष्य करते हुए आत्मानन्द लिखता है—

अग्नि परेशमाहुः ॥

अग्नि परमेश्वर को कहते हैं।

तदेवाग्निस्तदादित्यः ...... यजु० ३२ । १ ॥

पर भाष्य करते हुए महीधर ने लिखा है—

अग्निः तदेव कारणं ब्रह्मैव आदित्यस्तदेव वायुस्तदेव चन्द्रमास्तत् तदेव । उ एवार्थे । शुक्रं शुक्रं तत् प्रसिद्धम्......ताः प्रसिद्धाः आपः जलानि स प्रसिद्धः प्रजापतिरपि तदेव ब्रह्म ॥

इस में महीधर ने स्पष्ट ही अग्नि शब्द को परमात्मा वाचक ग्रहण किया है।

ब्रह्म वा अग्निः ॥ कौषी० ९ । १ । ५ ॥ शत० २ । ५ । ४ । ८ ॥
तैत्ति० ३ । ९ । १६ । ३ ॥

अर्थ—ब्रह्म अग्नि है ।

ईशोपनिषद् पर भाष्य करते हुए शंकर स्वामी ने स्वीकार किया है कि अग्नि ब्रह्म का नाम है—

अग्न्याख्यं ब्रह्माभदनोच्यते ॥ ईशोप० भाष्य० १७ ॥

अर्थात्—अग्नि नाम वाला ब्रह्म अभेद से कहा गया है ।

पाहि नोऽग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः ।

पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥ ऋ० १।३६।१५॥

इस मन्त्र में अग्नि नामक परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि वह धूर्तों और राक्षसों से रक्षा करे इत्यादि ।

उत ब्रुवन्तु जन्तवः उदग्निर्वृत्रहा जनि। धनञ्जयो रणे रणे ॥ऋ० १।७४।३॥

अर्थ—जो युद्धों में धन से जिताने वाला मेघ को नष्ट करने वाले सूर्य के समान (अग्निः) परमेश्वर दानी मनुष्य के लिये (गयम्) धन उत्पन्न करता है, उस का मनुष्य लोग उपदेश करें ।

विश्व—मूल—(विश प्रवेशने) इस धातु से "विश्व" शब्द सिद्ध होता है । विशन्ति प्रविष्टानि सर्वाण्याकाशादीनि भूतानि यस्मिन् यो वाऽऽकाशादिषु सर्वेषु भूतेषु प्रविष्टः सः विश्व ईश्वरः" जिस में आकाशादि सब भूत प्रवेश कर रहे हैं अथवा जो इन में व्याप्त होके प्रविष्ट हो रहा है इस लिये उस परमेश्वर का नाम विश्व है । इत्यादि नामों का ग्रहण अकार मात्र होता है । (पृष्ठ ४)

भाष्य—विश्व परमात्मा का नाम है यह ऊपर ' ओं ' की व्याख्या में दिखाया जा चुका है । इसी विषय में गौड़पादाचार्य लिखते है—

विश्वो हि स्थूलभुङ् नित्यं तैजसः प्रविविक्तभुक् ॥ गौड़पाद० का० ३॥

इस में परमात्मा का नाम विश्व बताया गया है ।

हिरण्यगर्भ—मूल—"ज्योतिर्वै हिरण्यं तेजो वै हिरण्यमित्यैतरेये शतपथे च ब्राह्मणे" "यो हिरण्यानां सूर्यादीनां तेजसां गर्भ उत्पत्तिनिमित्तमधिकरणं स हिरण्यगर्भः" जिसमें सूर्यादि तेज वाले लोक उत्पन्न होके जिसके आधार रहते हैं अथवा जो सूर्यादि तेजःस्वरूप पदार्थों का गर्भ नाम उत्पत्ति और निवासस्थान है इस से उस परमेश्वर का नाम "हिरण्यगर्भ" है । इस में यजुर्वेद के मन्त्र का प्रमाण है:—

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥यजु०अ०१३मं०४॥

इत्यादि स्थलों में "हिरण्यगर्भ" से परमेश्वर ही का ग्रहण होता है। (पृष्ठ ४)

भाष्य—माण्डूक्योपनिषद् आदि के प्रमाण ऊपर हम दे आए हैं। गौड़पादाचार्य ने स्वप्नस्थान से यही भाव निकाला है। मैत्र्युपनिषद् में लिखा है—

एवं हि खल्वात्मेशानः शम्भुर्भवो रुद्रः प्रजापतिर्विश्वसृग्घिरण्यगर्भः॥ मैत्र्यु० ६।८॥

यहां आत्मा, ईशान, शम्भु, भव, रुद्र, प्रजापति, विश्वसृक और हिरण्यगर्भ नाम परमात्मा के दिए गए हैं।

सायण "हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे" आदि ऋ०१०।१२१।१॥ पर भाष्य करता हुआ लिखता है—

"प्रजापतिर्हिरण्यगर्भः। तथा च तैत्तिरीयकं—प्रजापतिर्वै हिरण्यगर्भः... तै० सं० ५।५।१।२॥

अर्थात् प्रजापति परमात्मा ही हिरण्यगर्भ है। शतपथ में भी यही पाठ आता है—

प्रजापतिर्वै हिरण्यगर्भः॥ शत० ६।२।२।५॥

वायु—मूल—(वा गतिगन्धनयोः) इस धातु से "वायु" शब्द सिद्ध होता है। (गन्धनं हिंसनम्) "यो वाति चराऽचरञ्जगद्धरति बलिनां बलिष्ठः स वायुः" जो चराऽचर जगत् का धारण, जीवन और प्रलय करता और सब बलवानों से बलवान् है इस से उस ईश्वर का नाम "वायु" है। (पृष्ठ४)

भाष्य—साहित्य में अनेक स्थलों पर परमात्मा का नाम वायु आता है, जैसे—

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुः...॥ यजु० ३२।१॥

इस वेद मन्त्र में परमात्मा का नाम वायु बताया है। महीधर ने भी इस मन्त्र के अर्थ करते हुए यह बात स्वीकार की है।

यही वाक्य थोड़े से पाठ भेद से श्वेताश्वतरोपनिषद् में भी आता है। मैत्र्युपनिषद् में आता है—

त्वं ब्रह्मा त्वं च वै विष्णुस्त्वं रुद्रस्त्वं प्रजापतिः।
त्वमग्निर्वरुणो वायुस्त्वमिन्द्रस्त्वं निशाकरः॥ मैत्र्यु ०५।१॥

अर्थ—तू ब्रह्मा, और तू ही विष्णु, तू ही रुद्र, तू प्रजापति, तू अग्नि, तू वरुण, तू वायु, तू इन्द्र और तू निशाकर है।

इस विषय की और अधिक व्याख्या ऊपर ओंकार की व्याख्या में देखें।

तैजस—मूल—(तिज निशाने) इस धातु से "तेजः" और इस से तद्धित करने से "तैजस" शब्द सिद्ध होता है। जो आप स्वयं प्रकाश और सूर्य्यादि तेजस्वी लोकों का प्रकाश करने वाला है इससे उस ईश्वर का नाम "तैजस" है। इत्यादि नामार्थ उकारमात्र से ग्रहण होते हैं। (पृष्ठ ५)

भाष्य—माण्डूक्योपनिषद् की श्रुति जो ऊपर 'ओं' की व्याख्या में उद्धृत की गई है। उस के सम्बन्ध में गौड़पादाचार्य की कारिका है—

विश्वो हि स्थूलभुङ्नित्यं तैजसः प्रविविक्तभुक् ॥ का० ३ ॥

इस कारिका में परमात्मा का नाम तैजस बताया गया है।

ईश्वर-मूल-(ईश ऐश्वर्ये) इस धातु से "ईश्वर" शब्द सिद्ध होता है। "य ईष्टे सर्वैश्वर्यवान् वर्त्तते स ईश्वरः" जिस का सत्य विचारशील ज्ञान और अनन्त ऐश्वर्य है इस से उस परमात्मा का नाम "ईश्वर" है। (पृष्ठ ५)

भाष्य—यह बात सर्वसम्मत है कि ईश्वर ब्रह्म का नाम है, वेद से ले कर आज तक के ग्रन्थों में यह नाम पाया जाता है, जैसे—

यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ अथर्व० ११ । ४ । १॥

अर्थ—जो सब का ईश्वर है और जिस में सब कुछ प्रतिष्ठित है।

भगवद्गीता में आता है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देश अर्जुन तिष्ठति ॥

अर्थ—हे अर्जुन सब प्राणियों का ईश्वर हृदय देश में स्थित है।

माण्डूक्योपनिषद् का जो वाक्य ऊपर ओंकार की व्याख्या में उद्धृत किया गया है, उसी के आधार पर गौड़पादाचर्य लिखते हैं—

प्रणवं हीश्वरं विद्यात् सर्वस्य हृदि संस्थितम् ।

सर्वव्यापिनमोंकारं मत्वा धीरो न शोचति ॥ का० २८ ॥

अर्थ—प्रणव को ईश्वर जाने, जो सब के हृदय में स्थित है, उस सर्वव्यापक ओंकार को मान कर धीर पुरुष शोक को प्राप्त नहीं होता।

आदित्य-मूल-(दो अवखण्डने) इस धातु से "अदिति" और इससे तद्धित करने से "आदित्य" शब्द सिद्ध होता है। न विद्यते विनाशो यस्य सोऽयमदितिः + अदितिरेव आदित्यः" जिस का विनाश कभी न हो उसी ईश्वर की "आदित्य" संज्ञा है। (पृष्ठ ५)

भाष्य—यजुर्वेद के ३२ वें अध्याय का मन्त्र ऊपर उद्धृत किया जा चुका है,—उस में आदित्य नाम भी परमात्मा का बताया गया है—

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमा ॥ यजु० ३२ । १ ॥

अर्थ—वह ही अग्नि है, वह आदित्य है, वह वायु है और वह चन्द्रमा हैं।

लगभग ऐसा ही पाठ श्वेताश्वतरोपनिषद् ४ । २ । में भी आता है।

सामवेद में—

सोमं राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे । आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥ साम० पू० १ । २ । १० । १ ॥

इस मन्त्र में सोम, राजा, वरुण, अग्नि, आदित्य, विष्णु, सूर्य, ब्रह्मा और बृहस्पति परमात्मा के नाम बताए गए हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों में देखो—

असौ वा आदित्यो ब्रह्म ॥ शत० ७।४।१।१४॥

आदित्यो वै ब्रह्म ॥ जै० उ० ३।४।९॥

अर्थ—आदित्य ब्रह्म है।

इन्तेति चन्द्रमा ओमित्यादित्यः ॥ जै० उ० ३।६।२॥

ओमित्यादित्यः ॥ जै० उ० ३।१३।१२॥

अर्थात् ओम् आदित्य है।

इस विषय के और प्रमाण ऊपर ओंकार की व्याख्या के भाष्य में दिये गए हैं।

प्राज्ञ—मूल—(ज्ञा अवबोधने) " प्र " पूर्वक इस धातु से " प्रज्ञ " और इस से तद्धित करने से " प्राज्ञ " शब्द सिद्ध होता है। " यः प्रकृष्टतया चराऽचरस्य जगतो व्यवहारं जानाति स प्रज्ञः+ प्रज्ञ एव प्राज्ञः " जो निर्भ्रान्त ज्ञानयुक्त सब चराऽचर जगत् के व्यवहार को यथावत् जानता है, इस से ईश्वर का नाम " **प्राज्ञ** " है। **इत्यादि नामार्थ मकार से गृहीत होते हैं। (पृष्ठ ५)**

भाष्य—इस विषय में ऊपर बताया जा चुका है कि यह नाम ओंकार की तीसरी मात्रा मकार से ग्रहण होता है, ऊपर माण्डूक्योपनिषद् का प्रमाण भी दिया जा चुका है।

मूल—जैसे एक २ मात्रा से तीन २ अर्थ यहां व्याख्यात किये हैं, वैसे ही अन्य नामार्थ भी ओंकार से जाने जाते हैं। जो (शन्नो मित्रः शं व०) इस मन्त्र में मित्रादि नाम हैं वे भी परमेश्वर के हैं क्योंकि स्तुति, प्रार्थना, उपासना श्रेष्ठ ही की की जाती हैं। श्रेष्ठ उस को कहते हैं जो अपने गुण, कर्म्म, स्वभाव और सत्य सत्य व्यवहारों में सब से अधिक हो। उन सब श्रेष्ठों में भी जो अत्यन्त श्रेष्ठ उस को परमेश्वर कहते हैं। जिस के तुल्य कोई न हुआ न है और न होगा। जब तुल्य नहीं तो उस से अधिक क्योंकर हो सकता है ? (पृष्ठ ५)

भाष्य—परमात्मा के तुल्य कोई भी नहीं इस विषय में उपनिषद् भी बड़े सुन्दर ढङ्ग से प्रभु की महिमा गाती है—

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥ श्वेता० ६।८॥

अर्थ—वह किसी भी वस्तु का उपादान कारण नहीं है और न ही उस का कोई कारण है, न उस के कोई तुल्य है और न ही उस से कोई अधिक दिखाई देता है, उस की विविध प्रकार की महती शक्ति सुनी जाती है, उस का ज्ञान, बल और क्रिया स्वाभाविक है।

मूल—जैसे परमेश्वर के सत्य न्याय, दया, सर्वज्ञत्वादि अनन्त गुण हैं वैसे अन्य किसी जड़ पदार्थ वा जीव के नहीं हैं। जो पदार्थ सत्य है उस के गुण कर्म्म स्वभाव भी सत्य होते हैं इसलिये मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर ही की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करें, उस से भिन्न की कभी न करें क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, महादेव नामक पूर्वज महाशय विद्वान्, दैत्य दानवादि निकृष्ट मनुष्य और अन्य साधारण मनुष्यों ने भी परमेश्वर ही में विश्वास करके उसी की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करी, उससे भिन्न की नहीं की। वैसे हम सब को करना योग्य है। इसका विशेष विचार मुक्ति और उपासना विषय में किया जायगा। (पृष्ठ ५)

भाष्य—प्रश्न—पहले तो स्वामी जी "स ब्रह्मा स विष्णु" इत्यादि कैवल्योपनिषद् के वाक्य का अर्थ करते हुए लिखते हैं "सब जगत् के बनाने से ब्रह्मा, सर्वत्र व्यापक होने से विष्णु, दुष्टों को दण्ड दे के रुलाने से रुद्र, मङ्गलमय और सबका कल्याणकर्ता होने से शिव.........।" यहां आकर लिख दिया कि "ब्रह्मा, विष्णु, महादेव नामक पूर्वज महाशय विद्वान्.........।" यह दोनों पाठ परस्पर विरुद्ध हैं।

उत्तर—वादी ने या तो स्वामी जी महाराज के लेख को समझा नहीं या जान बूझ कर भ्रान्ति फैलाने की चेष्टा की है। स्वामी जी का यह सिद्धान्त नहीं कि ब्रह्मा, विष्णु आदि नाम सदा परमात्मा के ही वाचक होते हैं, बल्कि उन का पक्ष तो यह है—

"ओं यह तो केवल परमात्मा ही का नाम और है अग्नि आदि नामों से परमेश्वर के ग्रहण में प्रकरण और विशेषण नियम कारक हैं।"

इस लिये श्री स्वामी जी महाराज के पक्ष में ब्रह्मा आदि परमात्मा के नाम भी हो सकते हैं, और अन्य पदार्थों और मनुष्यों के भी, इस में कोई आपत्ति नहीं। वैसे लोक में भी ये नाम मनुष्यों के देखने में आते हैं। परमेश्वर नाम कई मद्रासी मनुष्यों का होता है, ब्रह्मदेव, विष्णुदेव, महादेव आदि नाम भी लोक में मनुष्यों के होते हैं और यही नाम परमात्मा के भी होते हैं, इस से कोई भी नकार नहीं कर सकता, तो यदि श्री स्वामी जी ने एक स्थल पर लिख दिया कि ब्रह्मा, विष्णु आदि नाम परमात्मा के हैं और साथ ही हेतु भी दिया कि सब जगत् के बनाने से उस का नाम ब्रह्मा है और सर्वत्र व्यापक होने से विष्णु है, इत्यादि, और दूसरे स्थल पर लिख दिया कि ब्रह्मा, विष्णु, महादेव पूर्वज मनुष्य थे, तो इस में विरोध क्या है? यह दोनों बातें ठीक हैं। हां यदि स्वामी जी ने लिखा होता कि ब्रह्मा, विष्णु आदि नाम परमात्मा के नहीं होते और दूसरे स्थल पर लिखा होता कि होते हैं तब परस्पर विरोध था, अथवा एक स्थल पर लिखा होता कि ये पूर्वजों के नाम थे और दूसरे पर लिखा होता कि ये मनुष्यों के नाम हो ही नहीं सकते, तब भी विरोध था। जो स्वामी जी के दोनों लेख वादी ने उपस्थित किये हैं, उन में कोई भी बुद्धिमान् परस्पर विरोध नहीं मान सकता।

मूल—प्रश्न—मित्रादि नामों से सखा और इन्द्रादि देवों के प्रसिद्ध व्यवहार देखने से उन्हीं का ग्रहण करना चाहिये।

उत्तर—यहां उनका ग्रहण करना योग्य नहीं क्योंकि जो मनुष्य किसी का मित्र है वही अन्य का शत्रु और किसी से उदासीन भी देखने में आता है। इस से मुख्यार्थ में सखा आदि का ग्रहण नहीं हो सकता। किन्तु जैसा परमेश्वर सब जगत् का निश्चित मित्र, न किसी का शत्रु और न किसी से उदासीन है, इससे भिन्न कोई भी जीव इस प्रकार का कभी नहीं हो सकता। इसलिये परमात्मा ही का ग्रहण यहां होता है। गौण अर्थ में मित्रादि शब्द से सुहृदादि मनुष्यों का ग्रहण होता है। (पृष्ठ ५)

भाष्य—कई लोग इस सिद्धान्त को समझने में भूल करते हैं। वह संसार की वस्तुओं को मुख्य समझते हैं और उनके गुणों की मुख्यता दर्शा कर इन नामों को गौण रूप से परमात्मा के वाचक मानते हैं, वे कहते हैं कि अग्नि शब्द का अर्थ मुख्य रूप से भौतिक आग है, इसी प्रकाश आदि गुणों वाला परमात्मा है, इस लिये गौण रूप से परमात्मा का नाम अग्नि है, उनमें कई महाशय अपने इस विचार को ऋषि दयानन्द के नाम से उपस्थित करते हैं और कुछ अपने ही नाम से उपस्थित करते हुए कहते हैं कि उन का यह पक्ष ऋषि दयानन्द के पक्ष की अपेक्षा अधिक प्रबल है। पहली श्रेणी के लोगों को तो ऋषि के ये ऊपर के शब्द पढ़ने चाहियें इन से उन को पता लग जायगा कि स्वामी जी के पक्ष को विना जाने ही वे लोग एक पक्ष को उन के नाम से उपस्थित कर रहे हैं। दूसरी श्रेणी के लोग जो इस पक्ष को स्वामी जी के पक्ष से अधिक प्रबल कहते हैं, वे विना ही किसी प्रमाण के कहते हैं, वे कोई भी प्रमाण वा युक्ति अपने पक्ष की पुष्टि में नहीं देते।

पूर्ण रूप से इन शब्दों के अर्थ परमात्मा में ही घट सकते हैं, अन्य वस्तुओं में तो इन अर्थों का कुछ अंश ही पाया जाता है। जैसे अग्नि का गुण प्रकाश है, प्रकाश पूर्ण रूप से परमात्मा में ही पाया जाता है, भौतिक आग में तो प्रकाश बहुत कम है, और अनित्य है, कुछ समय के पश्चात् वह प्रकाश नष्ट हो जाता है। परमात्मा तो नित्य ही प्रकाशस्वरूप है, इसी प्रकार से अन्य नामों और गुणों की व्यवस्था है, इस लिये अग्नि आदि नामों का मुख्य अर्थ परमात्मा है और गौण अर्थ भौतिक अग्नि आदि पदार्थ हैं।

अग्नि, मित्र, वरुण आदि नाम देवताओं के हैं, इस पक्ष के मानने वाले वादी की ओर से किए गए आक्षेप का उत्तर हम ऊपर दे आये हैं।

मित्र—मूल—(ञिमिदा स्नेहने) इस धातु से औणादिक "क्त्र" प्रत्यय के होने से "मित्र" शब्द सिद्ध होता है। "मेद्यति स्निह्यति स्निह्यते वा स मित्रः" जो सब से स्नेह करके और सब को प्रीति करने योग्य है इस से परमेश्वर का नाम **मित्र** है। (पृष्ठ ५)

भाष्य—इस विषय में ऋग्वेद में मन्त्र आता है—

देवो देवानामसि मित्रोऽद्भुता...॥ ऋग्वेद १ । ९४ । १३ ॥

अर्थ—आप देवों के देव और अद्भुत मित्र हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों में आता है—

ब्रह्म वै मित्रः ॥ शत० ४ । १ । ४ । १ ॥

ब्रह्म हि मित्रः ॥ शत० ५ । ३ । २ । ४ ॥

अर्थ—ब्रह्म मित्र है।

प्रश्न—मित्र शब्द दो अर्थों में माना गया है। उन में देवता वाचक सूर्यार्थक मित्र शब्द पुल्लिङ्ग है और सखि वाचक नपुंसक लिङ्ग है, जैसे—

मित्रं पवित्रं वनितां विनीतां सम्पत्तिमापत्ति हरीमुर्के।
त्यजेत्स्वतः को गुणवान् समर्थो वैधोऽन्तरायो यदि नान्तरा स्यात् ॥

उत्तर—वादी ने केवल काव्यों को ही पढ़ा प्रतीत होता है, वेद में अनेक स्थलों पर मित्र शब्द सखावाचक होते हुए भी पुल्लिङ्ग में आया है। ऊपर जो मन्त्र हम ने ऋग० १ । ९४ । १३ ॥ दिया है, उस में मित्र शब्द स्पष्ट ही सब के सखा परमात्मा के लिये आया है, सूर्य के लिये नहीं। यह शब्द सखा वाचक है, इस विषय में सायण का अर्थ द्रष्टव्य है, वह ऐसा है—

"हे अग्ने देवो द्योतमानस्त्वं देवानां सर्वेषामद्भुतो महान्मित्रोऽसि प्रौढ़ः सखा भवसि" ॥

इसी प्रकार निम्न लिखित मन्त्र और उस पर सायण भाष्य भी इस विषय का पोषक है—

त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः। सखा सखिभ्यः ईड्यः ॥ ऋ० १ । ७५ । ४ ॥

सायण भाष्य—"हे अग्ने त्वमुक्तप्रकारेणान्चिन्त्यरूपोऽप्यनुग्रहीतृतया सर्वेषां जनानां जामिर्बन्धुरासि, तथा प्रियः प्रीणयिता त्वं यजमानानां मित्रः प्रमीतेस्त्रायकोऽसि।"

इन दोनों ही मन्त्रों में मित्र शब्द पुल्लिङ्ग होते हुए भी स्पष्ट ही सखा वाचक है, सायण ने भी अपने भाष्य में जो कि ऊपर उद्धृत किया गया है, इस बात को स्वीकार किया है।

वादी ने अपने पक्ष की पुष्टि के लिये वेदादि आर्ष ग्रन्थों का एक भी प्रमाण नहीं दिया और न ही कोई युक्ति दी है, स्वामी जी का पक्ष प्रबल प्रमाणों से पुष्ट है यह हम ने ऊपर दिखा दिया है, अतः वादी का आक्षेप सर्वथा निर्मूल है।

वरुण—मूल—(वृञ् वरणे, वर ईप्सायाम्) इन धातुओं से उणादि "उनन्" प्रत्यय होने से "वरुण" शब्द सिद्ध होता है। "यः सर्वान् शिष्टान् मुमुक्षून्धर्मात्मनो वृणोत्यथवा यः शिष्टैर्मुमुक्षुभिर्धर्मात्मभिर्व्रियते वर्य्यते वा स वरुणः परमेश्वरः" जो आत्मयोगी, विद्वान् , मुक्ति की इच्छा करने वाले मुक्त और धर्मात्माओं का स्वीकार करता, अथवा जो शिष्ट, मुमुक्षु, मुक्त और धर्मात्माओं से ग्रहण किया जाता है वह ईश्वर "वरुण" संज्ञक है। अथवा "वरुणो नाम वरः श्रेष्ठः"। जिस लिये परमेश्वर सब से श्रेष्ठ है, इसी लिये उसका नाम "वरुण" है। (पृष्ठ ५)

भाष्य—यह नाम परमातमा का है इस विषय में ऊपर ऋषि ने "इन्द्रं मित्रं वरुणम्" ॥ आदि ऋ० १ । १६४। ४६ ॥ मन्त्र उद्धृत किया है। ऐसे अन्य भी अनेक मन्त्रों में वरुण नाम आता है, जैसे—

ऋजु नीति नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान्। अर्यमा देवैः सजोषाः ॥ ऋ० १।९०।७ ॥

इस मन्त्र में सर्वोत्कृष्ट वरुण नामक परमात्मा से ऋजु नीति की प्रार्थना की गई है।

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम् ।
द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः ॥ अथर्व०४।१६।२॥

अर्थ—जो पुरुष खड़ा होता वा चलता है और जो पुरुष ठगी करता है और जो घुस कर और जो बाहिर निकलकर काम करता है और दो जने एक साथ बैठ कर जो कुछ मन्त्रणा करते हैं, तीसरा राजा वरणीय वा दुष्ट निवारक वरुण परमेश्वर उसे जानता है। इस मन्त्र में वरुण शब्द परमात्मा का ग्राहक है।

मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः ।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥ यजु० ३२। १५॥

इस मन्त्र में सर्वश्रेष्ठ वरुण परमात्मा और अग्नि, प्रजापति आदि नामक परमात्मा से मेधा की प्रार्थना की गई है। मैत्र्युपनिषद् का वाक्य है—

त्वमग्निर्वरुणो वायुस्त्वमिन्द्रस्त्वं निशाकरः ॥ ५। १॥

अर्थ—तू अग्नि है वरुण है तू वायु है, इन्द्र है, तू निशाकर है।

प्रश्न—वरुण शब्द दिक्पाल का वाचक है, परमात्मा का नहीं, यह बात स्वामी दयानन्द ने स्वयं 'प्राचीदिक्' आदि मन्त्रों का अर्थ करते हुए स्वीकार की है।

उत्तर—वादी ने जो यह लिखा है कि वरुण शब्द परमात्मा से भिन्न किसी दिक्पाल का वाचक है इस के लिये कोई हेतु नहीं दिया। जो उस ने यह लिखा है कि

यह बात स्वामी दयानन्द ने स्वयं प्राचीदिक् आदि मन्त्रों के अर्थ में स्वीकार की है, यह सर्वथा मिथ्या है, यह नीचे के लेख से स्पष्ट हो जायगा—

ऋषि वर 'प्राचीदिक्' आदि मनसा परिक्रमा मन्त्रों के अर्थ के आरम्भ में लिखते हैं—

"सर्वासु दिक्षु व्यापकमीश्वरं सन्ध्यायामग्न्यादिभिः नामभिः प्रार्थयेत् ॥"

अर्थात्—सब दिशाओं में व्यापक ईश्वर की अग्न्यादि नामों से सन्ध्या में प्रार्थना करे।

" प्रतीची दिग्वरुणो ...." आदि मन्त्र जिस में वरुण शब्द आता है का अर्थ करते हुए ऋषि ने लिखा है—

"वरुणः सर्वोत्तमोऽधिपतिः परमेश्वरः" ॥ पञ्चमहायज्ञविधौ।

अर्थात्—वरुण सर्वोत्तम अधिपति परमेश्वर को कहते हैं। इस से स्पष्ट है कि 'प्राचीदिक्' आदि मन्त्रों में ऋषि ने वरुण आदि शब्दों का अर्थ परमात्मा ही किया है, कोई कल्पित दिक्पाल नहीं। वादी ने व्यर्थ ही ऋषि के सम्बन्ध में भ्रम फैलाने की चेष्टा की है।

अर्यमा—मूल—(ऋ गतिप्रापणयोः) इस धातु से "यत्" प्रत्यय करने से "अर्य्य" शब्द सिद्ध होता है और "अर्य्य" पूर्वक (माङ् माने) इस धातु से "कनिन्" प्रत्यय होने से "अर्यमा" शब्द सिद्ध होता है। "योऽर्यान् स्वामिनो न्यायाधीशान् मिमीते मान्यान् करोति सोऽर्यमा" जो सत्य न्याय के करने हारे मनुष्यों का मान्य और पाप तथा पुण्य करने वालों को पाप और पुण्य के फलों का यथावत् सत्य २ नियमकर्ता है इसी से उस परमेश्वर का नाम "अर्यमा" है। (पृष्ठ ६)

भाष्य—ऋषि ने स्वयं ऊपर "शन्नो मित्रः" आदि मन्त्र उद्धृत किया है और उस की व्याख्या में बताया है कि अर्यमा शब्द परमात्मा का वाचक है।

अथर्व वेद में मन्त्र है—

सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः सो अग्निः सूर्यः स एव महायमः॥ अथर्व० १३। ४। ४, ५॥

अर्थ—वह अर्यमा है, वह वरुण है, वह रुद्र है, वह महादेव है, वह अग्नि है, वह सूर्य है, और वह ही महायम है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में आता है—

अर्यमेति तमाहुर्यो ददाति ॥ तै० १। १। २। ४॥

अर्थ--अर्यमा उस को कहते हैं जो देता है। सारे संसार को देने वाला वही परमात्मा है।

इन्द्र—मूल—(इदि परमैश्वर्ये) इस धातु से "रन्" प्रत्यय करने से "इन्द्र" शब्द सिद्ध होता है "य इन्दति परमैश्वर्यवान् भवति स इन्द्रः परमेश्वरः" जो अखिल ऐश्वर्ययुक्त है इस से उस परमात्मा का नाम "इन्द्र" है। (पृष्ठ ६)

भाष्य—ऋषि ने "इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निं" आदि मन्त्र ऊपर स्वयं उद्धृत किया है। उस से स्पष्ट है कि इन्द्र शब्द परमात्मा का वाचक है। इसी विषय में सामवेद का मन्त्र है—

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते।

त्वमभि प्रनोनुमो जेतारमपराजितम् ॥ साम० उ० २। १। १९ ॥

अर्थ—हे इन्द्र आप की मैत्री में हम अन्न और बल युक्त हुए किसी से न डरें। हे बलपते! सब को जीतने वाले और किसी से भी न हारने वाले आपको हम वारंवार प्रणाम और आप की ही स्तुति करते हैं।

कौषीतकि ब्राह्मण का वाक्य है—

तस्मादाहेन्द्रो ब्रह्मति ॥ कौ० ६। १४ ॥

अर्थ—इस लिये कहा है कि इन्द्र ब्रह्म है।

यह ऊपर बताया जा चुका है कि शंकर स्वामी भी इन्द्र शब्द से कोई देवराज इन्द्र नामक व्यक्ति का ग्रहण नहीं करते, किन्तु बृहदारण्यक २। ५। १९ के भाष्य में

इन्द्रः परमेश्वरः ॥

ऐसा लिखते हैं। उपनिषदों में भी इन्द्र नाम परमात्मा का वाचक आता है, जैसे—

स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः ॥ कैवल्यु० ८ ॥

त्वमग्निर्वरुणो वायुस्त्वमिन्द्रस्त्वं निशाकरः ॥ मैत्र्यु० ५। १ ॥

यहां परमात्मा के अन्य नामों के साथ उस का नाम इन्द्र भी बताया गया है।

बृहस्पति—मूल—"बृहत्" शब्दपूर्वक (पा रक्षणे) इस धातु से "डति" प्रत्यय, बृहत् के तकार का लोप और सुडागम होने से "बृहस्पति" शब्द सिद्ध होता है "यो बृहतामाकाशादीनां पतिः स्वामी पालयिता स बृहस्पतिः" जो बड़ों से भी बड़ा और बड़े आकाशादि ब्रह्माण्डों का स्वामी है इस से उस परमेश्वर का नाम "बृहस्पति" है (पृष्ठ ६)

भाष्य—बृहस्पति परमात्मा का नाम है, इस विषय में वैदिक साहित्यसे अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं, जैसे—

सोमं राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे ।
आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥ सा० पू० १।२।१०।१॥

इस मंत्र में परमात्मा के कई नाम बताए गए है, उन्हीं में एक नाम बृहस्पति है।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ऋ०१। ८९।६॥

इस मन्त्र में परमात्मा से भिन्न २ नामों द्वारा कल्याण के लिये प्रार्थना की गई है, उन्हीं नामों में बृहस्पति नाम भी एक है।

ब्रह्म वै बृहस्पतिः ॥ ऐतरेय० १ । १३ । १ । १९ ॥ कौषी० ७ । १० ॥
शत० ३ । १ । ४ । १५ ॥ जै० उ० १ । ३७ । ६ ॥

ब्रह्म बृहस्पतिः ॥ गोपथ० ६ । ७॥
अर्थ—ब्रह्म बृहस्पति है।

विष्णु—मूल—(विष्लृ व्याप्तौ) इस धातु से " नु " प्रत्यय हो कर " विष्णु " शब्द सिद्ध हुआ है। " वेवेष्टि व्याप्नोति चराऽचरं जगत् स विष्णुः " चर और अचररूप जगत् में व्यापक होने से परमात्मा का नाम विष्णु " है।(पृष्ठ ६)

भाष्य—ऊपर जो "सोमं राजानं" आदि साम वेद का मंत्र उद्धृत किया गया है, उस में परमात्मा का नाम विष्णु भी आया है। इस विषय में और कुछ प्रमाण नीचे दिये जाते हैं—

तदस्य प्रियमभिपाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णो पदे परमे मध्वउत्सः ॥
ऋ० १ । १५४ । ५ ॥

इस मन्त्र का भाष्य करता हुआ सायण विष्णु शब्द पर लिखता है—
" विष्णोर्व्यापकस्य परमेश्वरस्य " ।
अर्थात् विष्णु का अर्थ सर्वव्यापक परमेश्वर है।

कठ उपनिषद् के
तद्विष्णो परमं पदम् ॥ ३ । ९ ॥
इस वाक्य पर भाष्य करते हुए शंकर स्वामी लिखते हैं—
तद्विष्णोर्व्यापनशीलस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ॥

अर्थात् विष्णु शब्द व्यापनशील ब्रह्म का वाचक है इस का अर्थ ऋषि दयानन्द ने भी चर और अचर रूप जगत् में व्यापक होने से परमात्मा का नाम विष्णु है ऐसा किया है।

स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्।
स एव विष्णु स प्राणः स कालाग्नि स चन्द्रमाः ॥ कैवल्य० ८ ॥

अर्थ—वह ब्रह्म है, वह शिव है, वह इन्द्र है, वह अक्षर है, वह परम स्वराट् है, वह ही विष्णु है, वह प्राण है, वह कालाग्नि है, वह चन्द्रमा है।

त्वं ब्रह्मा त्वं च वै विष्णुस्त्वं रुद्रस्त्वं प्रजापतिः ॥ मैत्र्यु० ५।१॥

अर्थ—तू ब्रह्मा है, और तू विष्णु है, तू रुद्र है, तू प्रजापति है।

ईशानः शम्भुर्भवो रुद्रः प्रजापतिर्विश्वसृग्घिरण्यगर्भः सत्यं प्राणो हंसः शास्ता विष्णुर्नारायणः ॥ मैत्र्यु० ६।८॥

यहां परमात्मा के अनेक नामों के साथ विष्णु नाम भी बताया गया है।

यजुर्वेद के मन्त्र—

तद्विष्णो परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ॥

में उस सर्वव्यापक विष्णु नामक परमात्मा के परम पद को विद्वान् लोग देखते हैं ऐसा बताया गया है।

उरुक्रमा—मूल—"उरुर्महान् क्रमः पराक्रमो यस्य स उरुक्रमः" अनन्त पराक्रमयुक्त होने से परमात्मा का नाम "उरुक्रम" है। (पृष्ठ ६)

भाष्य—ऋग्वेद का मन्त्र जो ऊपर उद्धृत किया गया है, उस में उरुक्रमा शब्द परमात्मा का वाचक है, ऐसा सायण ने भी स्वीकार किया है यह ऊपर विष्णु शब्द के अर्थों से ही स्पष्ट है, मन्त्र यह है—

तदस्य प्रियमभिपाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति। उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णो पदे परमे मध्व उत्सः ॥ ऋ० १।१५४।५॥

अर्थ—मैं (यत्र) जिस में (देवयवः) दिव्य भोगों की कामना करने वाले (नरः) अग्रगन्ता उत्तम जन (मदन्ति) आनन्दित होते हैं (तत्) उस (अस्य) इस (उरुक्रमस्य) अनन्त पराक्रमयुक्त (विष्णोः) व्यापक परमात्मा के (प्रियम्) प्रिय (पाथः) मार्ग को (अभ्यश्याम्) सब से प्राप्त होऊं, जिस परमात्मा के (परमे) अत्युत्तम (पदे) प्राप्त होने योग्य मोक्षपद में (मध्वः) मधुर आदि गुण युक्त पदार्थ का (उत्सः) कूप सा तृप्ति करने वाला गुण वर्तमान है (सः हि) वही (इत्था) इस प्रकार से हमारा बन्धु है।

उरुक्रम शब्द का अर्थ वाचस्पत्य कोष में लिखा है—उरवः भूम्यादिव्यापकत्वात् क्रमाः पादविक्षेपो अस्य ।

अर्थात्—उस परमात्मा का पाद विक्षेप बहुत बड़ा है, क्योंकि वह भूमि आदि सब स्थानों पर व्यापक है ।

ब्रह्म—मूल—(वायो ते ब्रह्मणे नमोऽस्तु) (बृह बृहि वृद्धौ) इन धातुओं से "ब्रह्म" शब्द सिद्ध होता है । (पृष्ठ ६)

भाष्य—इस विषय की निम्न लिखित प्रमाण पुष्टि करते हैं—

ब्रह्मा कृणोति वरुणो गातुविदं तमीमहे । व्यूर्णोति हृदामतिं नव्यो जायतामृतं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ऋ० १ । १०५ । १५ ॥

अर्थ—(वयं) हम लोग (ऋतं) सत्य स्वरूप (ब्रह्म) (पदपाठ में यह शब्द ब्रह्म है और सूची में भी ब्रह्म है, पाणिनी के सूत्र 'अन्येषामपि दृश्यते' से दीर्घ हो गया है) परमेश्वर वा (वरुणः) सब से उत्तम विद्वान् (गातुविदम्) वेदवाणी के जानने वाले को (कृणोति) करता है (तम्) उस को (ईमहे) याचते अर्थात् उस से मांगते हैं कि उस की कृपा से जो (नव्यः) नवीन विद्वान् (हृदा) हृदय से (मतिं) विशेष ज्ञान को (व्यूर्णोति) उत्पन्न करता है—इत्यादि ।

तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥ यजु० ३२ । १ ॥

अर्थ—वह शुक्र है, वह ब्रह्म है, वह आप है, वह प्रजापति है ।

इस विषय में मनु का प्रमाण "एतमेके वदन्त्यग्निं" आदि ऋषि ने स्वयं दिया है । उस में ब्रह्म नाम उसी प्रकाशस्वरूप परमात्मा का बताया गया है ।

प्रज्ञानं ब्रह्म ॥ ऐत० ५ ३॥

इस वाक्य पर भाष्य करते हुए शंकर स्वामी लिखते हैं—

प्रज्ञा प्रतिष्ठा सर्वस्य जगतः तस्मात् प्रज्ञानं ब्रह्म ॥

वैसे भी यह बात कि ब्रह्म परमात्मा का नाम है सर्वसम्मत है ।

सूर्य—मूल—" सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च " इस यजुर्वेद के वचन से जो जगत् नाम प्राणी चेतन और जङ्गम अर्थात् जो चलते फिरते हैं "तस्थुषः" अप्राणी अर्थात् स्थावर जड़ अर्थात् पृथिवी आदि हैं उन सब के आत्मा होने और स्वप्रकाशरूप सब के प्रकाश करने से परमेश्वर का नाम "सूर्य" है । (पृष्ठ ७)

भाष्य—अथर्व वेद का मन्त्र है—

सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः ।

सो अग्नि स सूर्यः स एव महायमः ॥ अथर्व० १३ । ४ । ४, ५ ॥

अर्थ—वह अर्यमा है, वह वरुण है, वह रुद्र है, वह महादेव है, वह अग्नि है, वह सूर्य है, वह ही महायम है ।

प्रसिद्ध मन्त्र सन्ध्या में आता है—

उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।

दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ ऋ० १ । ५० । १ ॥

अर्थ—जिस से ऋग्वेदादि चार वेद प्रसिद्ध हुए, और जो प्रकृत्यादि सब भूतों में व्याप्त हो रहा है और जो सब जगत् का उत्पादक है, वह जातवेदा परमात्मा (देवं) सब देवों का देव और (सूर्यम्) सब जीवादि जगत् का प्रकाशक (त्यं) उस परमात्मा को (दृशे विश्वाय) विश्व विद्या की प्राप्ति के लिये हम लोग उपासना करते हैं (उद्वहन्ति केतवः) वेद की स्तुति और जगत् के पृथक् २ रचना आदि नियामक गुण उसी परमेश्वर को जानते और प्राप्त कराते हैं ।

'चित्रं देवानाम्' आदि मन्त्र ऋषि ने ऊपर स्वयं उद्धृत कर दिया है, उस में सूर्य नाम आता है ।

शतपथ में आता है—

सूर्यो वै सर्वेषां देवानामात्मा ॥ शत० १४ । ३ । २ । ९ ॥

अर्थ—सूर्य नामक परमात्मा देवताओं का आत्मा है ।

तदेवाग्निस्तद्वायुस्तत्सूर्यस्तदु चन्द्रमा ।

तदेव शुक्रममृतं तद्ब्रह्म तदापः स प्रजापतिः ॥ महा० ना० १ । २ ॥

अर्थ—वह अग्नि, वह वायु, वह सूर्य और वह चन्द्रमा है; वह ही शुक्र है, वह अमृत, वह ब्रह्म, वह आप और वह प्रजापति है ।

आत्मा—मूल—(अत सातत्यगमने) इस धातु से "आत्मा" शब्द सिद्ध होता है । "योऽतति व्याप्नोति स आत्मा" जो सब जीवादि जगत् में निरन्तर व्यापक हो रहा है । (पृष्ठ ७)

भाष्य—आत्मा शब्द परमात्मा वाचक भी है, यह बात सर्वसम्मत सी ही है । आर्ष ग्रन्थों में यह नाम अनेक स्थलों पर आता है—

चित्रं देवानां............आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ ऋ० १।११५।१ ॥

यजु० ७ । ४२ ॥

इस मन्त्र में आत्मा परमात्मा वाचक है ।

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः...... ॥ तै० २।१॥

अर्थात् उस आतमा परमात्मा से आकाश प्रकट हुआ (आकाश का व्यवहार होने लगा)।

आत्मत एवेदं सर्वम् ॥ छां० ७।२६।१॥

अर्थ—यह सब कुछ (आत्मा) परमात्मा से है।

यदि कोई कहे कि आत्मा से यहां तात्पर्य जीवात्मा से है परमात्मा से नहीं, तो यह उस की भूल होगी, क्योंकि जीवात्मा इस सारे जगत् का कर्त्ता नहीं है, जगत्-कर्त्ता परमात्मा ही है।

ऐतरेयोपनिषद् ॥ १।१॥ पर शाङ्कर भाष्य—

आत्मेति—आत्मा आप्नोतेरत्तेरततेर्वा परः सर्वज्ञः सर्वशक्तिरशनायादि-सर्वसंसारधर्मविवर्जितो नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावोऽजोऽजरोऽमृतोऽभयोऽद्वयो वै"।

इस में स्पष्ट ही शंकर स्वामी आत्मा शब्द को परमात्मा वाचक मान रहे हैं। यदि कोई कहे कि शंकर आत्मा और परमात्मा को एक ही मानते हैं इस लिये इस उद्धरण में भी उन का तात्पर्य परमात्मा से ही हो ऐसा सिद्ध नहीं होता, तो उसका यह कहना ठीक नहीं क्योंकि शंकर अज्ञान में फंसे हुए संसारी अवस्था वाले को जीव मानता है, परन्तु यहा स्पष्ट लिखा है "सर्वसंसारधर्मविवर्जितः" इस लिए यह मानना पड़ेगा कि शंकर का तात्पर्य यहा परमात्मा से ही है।

परमात्मा—मूल—" परश्चासावात्मा च य आत्मभ्यो जीवेभ्यः सूक्ष्मेभ्यः परोऽतिसूक्ष्मः स परमात्मा " जो सब जीव आदि से उत्कृष्ट और जीव प्रकृति तथा आकाश से भी अतिसूक्ष्म और सब जीवों का अन्तर्यामी आत्मा है इस से ईश्वर का नाम " परमात्मा " है। (पृष्ठ ७)

भाष्य—यह नाम स्वतः सिद्ध है, सब मानते हैं कि यह ब्रह्म का नाम है, इस में किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है, फिर भी कुछ पौराणिक उपनिषदों के उद्धरण दिए जाते हैं—

परमात्मानं परमं ब्रह्म ॥ नृसिंहोत्तरता० ४॥

अर्थ—परमात्मा परम ब्रह्म का वाचक है।

आत्मानं सन्धत्ते परमात्मनि ॥ ब्रह्मोप० ३॥

अर्थ—आत्मा को परमात्मा में लगाता है।

स तत्पदार्थः परमात्मा परं ब्रह्मेत्युच्यते ॥ स्वरोप० ४॥

अर्थ—वह वह पदार्थ परमात्मा पर ब्रह्म कहलाता है।

स वै ब्रह्म परमात्मोच्यते ॥ हंसोप० १॥

अर्थ—वह ब्रह्म परमात्मा कहलाता है।

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ १७ ॥

अर्थ—उत्तम पुरुष तो अन्य है जो परमात्मा कहलाता है, जो तीनों लोकों में प्रविष्ट होकर उस का पालन करता है, और अविनाशी ईश्वर है।

प्रश्न—स्वामी दयानन्द ने परमात्मा का निर्वचन "परश्चासवात्मा च परमात्मा" ऐसा किया है। व्याकरण में पर शब्द का जहां आत्मा के साथ सम्बन्ध होगा तो, "परात्मा" बनेगा, इस लिये यह निर्वचन ठीक नहीं। निर्वचन "परमश्चासौ आत्मा परमात्मा" होना चाहिये, परम शब्द का आत्मा शब्द के साथ सम्बन्ध होने से परमात्मा बनेगा।

उत्तर—प्रतीत होता है कि वादी ने ऋषि के पूरे लेख को पढ़े विना ही आक्षेप कर दिया है। पूरा लेख यह है—

परश्चासावात्मा च य आत्मभ्यो जीवेभ्यः सूक्ष्मेभ्यः परोऽति सूक्ष्मः स परमात्मा।

इस लेख को पढ़ने से पता लगता है कि ऋषि ने परमात्मा शब्द की व्याकरण की दृष्टि से निरुक्ति नहीं की, बल्कि इस शब्द का अर्थ मात्र किया है। वे "परश्चासौ आत्मा" अर्थात् पर जो आत्मा है, इतना लिख कर आगे और स्पष्ट करते हैं—"य आत्मभ्यो जीवेभ्यः सूक्ष्मेभ्यः परोऽति सूक्ष्मः स परमात्मा" अर्थात् जो सूक्ष्म जीवात्माओं से पर-अति सूक्ष्म है वह परमात्मा, अर्थात् जो जीवात्माओं से सूक्ष्मता में पर है-अत्यन्त सूक्ष्म है, इस लिये उसको परमात्मा कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द ने परमात्मा शब्द का अर्थ किया है, व्याकरण की दृष्टि से निरुक्ति नहीं की।

यदि इसको निरुक्ति भी मान लिया जावे तब भी कोई आपत्ति नहीं है, ऐसी निरुक्ति ऋषि दयानन्द के पूर्व भी विद्वानों ने की है—जैसे स्कन्द स्वामी ने निरुक्त १०। ४ ॥ पर भाष्य करते हुए ऋ० ५। ८५। ३ ॥ के नीचीनवारं ' शब्द की निरुक्ति ऐसे की है—

"नीचं वारं यस्य स नीचीनवरोऽधोमुखस्तम्" यहां 'नीचीनं' के स्थान पर 'नीचं' शब्द ही निरुक्ति में दिया है।

परमेश्वर—मूल—सामर्थ्य वाले का नाम ईश्वर है। "य ईश्वरेषु समर्थेषु परमः श्रेष्ठः स परमेश्वरः" जो ईश्वरों अर्थात् समर्थों में समर्थ, जिस के तुल्य कोई भी न हो उस का नाम "परमेश्वर" है। (पृष्ठ ७)

भाष्य—परमेश्वर पर ब्रह्म का नाम है, इस विषय में कोई ननु नच नहीं कर सकता। इस विषय में मैत्र्युपनिषद् का एक प्रमाण देना हम पर्याप्त समझते हैं—

सत्यसङ्कल्पः सत्यकाम एष परमेश्वर एष भूताधिपतिरेष भूतपाल......

सत्यं प्राणो हंसः शास्ता ऽच्युतो विष्णुर्नारायणः ।। मैत्र्यु० ७ । ७ ।।

अर्थ—वह परमेश्वर सत्य सङ्कल्प, सत्य काम, प्राणीमात्र का अधिपति और रक्षक.........अविनाशी, जीवनहेतु, सर्वव्यापक होने से सब स्थानों को प्राप्त (हंस), शासक अच्युत, विष्णु और नारायण है।

सविता-मूल-(षुञ् अभिषवे, षूङ् प्राणिगर्भविमोचने) इन धातुओं से " सविता " शब्द सिद्ध होता है। " अभिषवः प्राणिगर्भविमोचनं चोत्पादनम् । यश्चराचरं जगत् सुनोति सूते वोत्पादयति स सविता परमेश्वरः" जो सब जगत् की उत्पत्ति करता है इस लिए परमेश्वर का नाम "सविता" है। (पृष्ठ ७)

भाष्य—वेद के प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र में सविता परमात्मा से बुद्धि की प्रार्थना की गई है। इस विषय में और भी प्रमाण उपस्थित किये जा सकते हैं जैसे—

देवस्य वयं सवितुः सवीमनि श्रेष्ठे स्याम वसुनश्च दावने ।
यो विश्वस्य द्विपदो यश्चतुष्पदो निवेशने प्रसवे चासि भूमनः ।।

ऋ० ६ । ७१ । २ ।

अर्थ—हे विद्वान् राजा (यः) जो (द्विपदः) मनुष्यादि दो पग वाले जीव और (यः) जो (चतुष्पदः) गौ आदि चार पग वाले पशु आदि जीवों के (भूमनः) बहुरूपी (विश्वस्य) समग्र संसार के (प्रसवे) उस उत्पन्न हुए स्थान में (निवेशने) जिस में सब निवेश करते हैं, अभिव्याप्त हो कर विराजमान है—(सवितुः) उस सकल जगत् के उत्पन्न करने वाले (देवस्य) अपने आप प्रकाशमान परमेश्वर के (वसुनः च) धन के भी (दावने) देने में जैसे (वयम्) हम लोग उद्यत (स्याम) हों, वैसे तुम (च) भी (असि) हो।

प्रजापतिर्वै सविता ।। तां० १६ । ५ । १७ ।।

अर्थ—प्रजापति परमात्मा सविता है।

पुरुष एव सविता ।। जै० उ० ४ । २७ । १७ ।।

अर्थ—पुरुष ही सविता है।

शास्ता विष्णुर्नारायणोऽर्कः सविता धाता विधाता सम्राडिन्द्र इन्दुरिति।। मैत्र्यु० ६ । ८ ।।

इस उद्धरण में परमात्मा के कई नामों में सविता नाम भी बताया गया है।

देव—मूल—(दिवु क्रीड़ाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु) इस धातु से "देव" शब्द सिद्ध होता है। (क्रीड़ा) जो शुद्ध जगत् को क्रीड़ा कराने (विजिगीषा) धार्मिकों को जिताने की इच्छायुक्त (व्यवहार) सब चेष्टा के साधनोपसाधनों का दाता (द्युति) स्वयंप्रकाशस्वरूप सब का प्रकाशक (स्तुति) प्रशंसा के योग्य (मोद) आप आनन्दस्वरूप और दूसरों को आनन्द देनेहारा (मद) मदोन्मत्तों का ताड़नेहारा (स्वप्न) सब के शयनार्थ रात्रि और प्रलय का करने हारा (कान्ति) कामना के योग्य और (गति) ज्ञानस्वरूप है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "देव" है । अथवा "यो दीव्यति क्रीडति स देवः" जो अपने स्वरूप में आनन्द से आप ही क्रीड़ा करे अथवा किसी के सहाय के बिना क्रीड़ावत् सहज स्वभाव से सब जगत् को बनाता वा सब क्रीड़ाओं का आधार है। "विजिगीषते स देवः" जो सब का जीतनेहारा स्वयं अजेय अर्थात् जिसको कोई भी न जीत सके । "व्यवारयति स देवः" जो न्याय और अन्यायरूप व्यवहारों का जाननेहारा और उपदेष्टा, "यश्चराचरं जगत् द्योतयति" जो सब का प्रकाशक, "यः स्तूयते स देवः" जो सब मनुष्यों को प्रशंसा के योग्य और निन्दा के योग्य न हो। 'यो मोदयति स देवः" जो स्वयं आनन्दस्वरूप और दूसरों को आनन्द कराता जिसको दुःख का लेश भी न हो " यो माद्यति स देवः " जो सदा हर्षित, शोक रहित और दूसरों को हर्षित करने और दुःखों से पृथक् रखने वाला, "यः स्वापयति स देवः" जो प्रलय समय अव्यक्त में सब जीवों को सुलाता, " यः कामयते काम्यते वा स देवः " जिसके सब सत्य काम और जिसकी प्राप्ति की कामना सब शिष्ट करते हैं तथा " यो गच्छति गम्यते वा स देवः" जो सब में व्याप्त और जानने के योग्य है इससे उस परमेश्वर का नाम " देव " है। (पृष्ठ ७)

भाष्य—इस विषय में निम्नलिखित प्रमाण द्रष्टव्य हैं—

देवो देवानामसि मित्रोऽद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ॥

ऋ० १।९४।१३॥

अर्थ—आप देवों के देव हैं, आप आश्चर्यरूप आनन्द देने वाले मित्र हैं। आप वसुओं के वसु हैं, यज्ञ में अत्यन्त शोभायमान् हैं।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी केवलो निर्गुणश्च ॥श्वेता० ६।११॥

अर्थ—इस उपनिषद्-वाक्य में परमात्मा को 'देव' नाम से स्मरण किया है।

निवृत्ते सर्वदुःखानामीशानः प्रभुरव्ययः।
अद्वैतः सर्वभावानां देवस्तुर्यो विभुः स्मृतः ॥ गौड़ पा० का० १०॥

इस कारिका में परमात्मा का नाम देव बताया गया है।

पृथिवी—मूल—(प्रथ विस्तारे) इस धातु से " पृथिवी " शब्द सिद्ध होता है "यः प्रथते सर्वजगद्विस्तृणाति स पृथिवी " जो सब विस्तृत जगत् का विस्तार करने वाला है इसलिये उस परमेश्वर का नाम **पृथिवी है। (पृष्ठ ७)**

भाष्य—मैत्र्युपनिषद् का वाक्य है—

त्वमन्नस्त्वं यमस्त्वं पृथिवी त्वं विश्वं खमथाच्युतः ।
विश्वेश्वर नमस्तुभ्यं विश्वात्मा विश्वकर्मकृत् ।
विश्वभुग्विश्वायुस्त्वं विश्वक्रीड़ारतिप्रभुः ॥ मैत्र्यु० ५ । १ ॥

यहां अन्न, यम, विश्व, ख, आदि नामों के साथ परमात्मा का नाम पृथिवी भी बताया है ।

आकाश—मूल—(काशृ दीप्तौ) इस धातु से "आकाश" शब्द सिद्ध होता है, "यः सर्वतः सर्वं जगत् प्रकाशयति स आकाशः" जो सब ओर से जगत् का प्रकाशक है इसलिये उस परमात्मा का नाम "आकाश" है। (पृष्ठ ७)

भाष्य—वेदान्त सूत्र—

आकाशस्तल्लिङ्गात् ॥ १ । १ । २२ ॥

पर भाष्य करते हुए शंकर स्वामी लिखते हैं—

"आकाशशब्देन ब्रह्मणो ग्रहणं युक्तम् । कुतः । तल्लिङ्गात् । परस्य ब्रह्मण इदं लिङ्गम्"—

'सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्ते' ॥छां० १ । ९ । १ ॥ इति । परस्माद्धि ब्रह्मणो भूतानामुत्पत्तिरिति वेदान्तेषु मर्यादा । ……तथा—आकाशं प्रत्यस्तं यान्ति ।' छां० १ । ९ । १ ॥ इति ब्रह्मलिङ्गम् ।

अर्थात् शङ्कर स्वामी ने लिखा है कि आकाश शब्द से ब्रह्म का ग्रहण करना चाहिये, और फिर इस की पुष्टि में छान्दोग्य उपनिषद् का प्रमाण दिया है कि यह सब प्राणी आकाश से ही उत्पन्न होते हैं, और प्राणियों की उत्पत्ति परब्रह्म से ही होती है और आकाश के प्रति ही सब प्राणी अस्त होते हैं। भौतिक आकाश से प्राणियों की उत्पत्ति आदि नहीं हो सकती इस प्रकार से अनेक युक्ति और प्रमाण देकर शंकर स्वामी सिद्ध करते हैं कि आकाश शब्द से ब्रह्म का ग्रहण करना चाहिये ।

अन्न, अन्नाद, अत्ता—मूल—(अद भक्षणे) इस धातु से "अन्न" शब्द सिद्ध होता है ।

अद्यतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते ॥ १ ॥
अहमन्नमहमन्नमहमन्नम् । अहमन्नादोऽहमन्नादोऽहमन्नादः ॥२॥
तैत्ति० उपनि० [अनुवाक २ । १०]

अत्ता चराचरग्रहणात् [वेदान्तदर्शने अ० १ । पा० २ । सू० ९]

यह व्यासमुनि कृत शारीरिक सूत्र है। जो सबको भीतर रखने वा सब को ग्रहण करने योग्य चराचर जगत् का ग्रहण करने वाला है, इससे ईश्वर के "अन्न" "अन्नाद" और "अत्ता" नाम हैं। और जो इस में तीन वार पाठ है सो आदर के लिये है। जैसे गूलर के फल में कृमि उत्पन्न होके उसी में रहते और नष्ट हो जाते हैं वैसे परमेश्वर के बीच में सब जगत् की अवस्था है। (पृष्ठ ८)

भाष्य—ऊपर श्री स्वामी जी महाराज ने तैत्तिरीयोपनिषद् का प्रमाण दिया है कि अन्न और अन्नाद परमात्मा के नाम हैं। इस विषय में मैत्र्युपनिषद् में आता है—

त्वमन्नस्त्वं यमस्त्वं पृथिवी त्वं विश्वम् ॥ मैत्र्यु० ५। १॥

अत्ता के विषय में जो प्रमाण ऊपर वेदान्त का श्री स्वामी जी ने दिया है, उस सूत्र के भाष्य में शंकर स्वामी लिखते हैं। पहले प्रश्न उठाते हैं—

"तत्र किमग्निरत्ता स्यात्, उत जीवः, अथवा परमात्मेति संशयः।"

अर्थात् क्या अग्नि अत्ता है, जीव अत्ता है, अथवा परमात्मा अत्ता है, यह संशय है।

इस संशय को उठा कर अन्त में निश्चय करते हैं कि "अत्तात्र परमात्मा भवितुमर्हति" अर्थात् अत्ता यहां परमात्मा हो सकता है, फिर इस के लिये हेतु देते हैं—"कुतः ? चराचरग्रहणात्" चराचर के ग्रहण करने से। फिर कहते हैं—"न परमात्मनोऽन्यः कात्स्न्र्येनात्ता संभाति" अर्थात् परमात्मा से अन्य कोई पूर्णतया अत्ता नहीं हो सकता।

अन्त में शंकर स्वामी कहते हैं—

सर्ववेदान्तेषु सृष्टिस्थितिसंहार कारणत्वेन ब्रह्मणः प्रसिद्धत्वात्।
तस्मात् परमात्मैवेहात्ता भवितुमर्हति।"

अर्थ—सब वेदान्तों (उपनिषदों आदि) में सृष्टि के बनने, स्थिति और संहार का कारण ब्रह्म बताया गया है, इस लिये परमात्मा ही यहां अत्ता हो सकता है।

इस से अगले सूत्र—

प्रकरणाच्च ॥ १। २। १० ॥

पर भाष्य करते हुए भी शंकर स्वामी यही सिद्ध करते हैं कि अत्ता से परब्रह्म का ग्रहण ही किया जाना चाहिये।

वसु—मूल—(वस निवासे) इस धातु से " वसु " शब्द सिद्ध हुआ है। " वसन्ति भूतानि यस्मिन्नथवा यः सर्वेषु भूतेषु वसति स वसुरीश्वरः" जिसमें आकाशादि भूत वसते हैं और जो सब में वास कर रहा है इस लिये उस परमेश्वर का नाम " वसु " है। (पृष्ठ ८)

भाष्य—वेद मन्त्र है—

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।

अथाते सुम्नमीमहे ॥ साम० उ० ४ । २ । १३ ॥

अर्थ—हे (वसो !) सब में वास करने वाले वा सब को बसाने वाले प्रभो ! (शतक्रतो) हे जगतों के उत्पत्तिस्थिति प्रलय आदि कर्तः ! (त्वं हि नः पिता) आप ही हमारे पालन करने वाले और जनक हैं, (त्वं माता) हमारी मान करने वाली सच्ची माता भी आप ही (बभूविथ) हैं (अथ) इस लिये आप से ही (सुम्नम) सुख को (ईमहे) हम मांगते हैं ।

अन्य कुछ नामों के सम्बन्ध में जो ऊपर ऋग्वेद १ । ९४ । १३ ॥ मन्त्र उद्धृत किया गया है, उस में—

वसुर्वसूनामासि

पाठ में वसु नाम परमात्मा का आया है ।

रुद्र—मूल—(रुदिर् अश्रुविमोचने) इस धातु से " णिच् " प्रत्यय होने से " रुद्र " शब्द सिद्ध होता है । " यो रोदयत्यन्यायकारिणो जनान् स रुद्रः " जो दुष्ट कर्म करनेहारों को रुलाता है इससे उस परमेश्वर का नाम " रुद्र " है । (पृष्ठ ८)

यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति यद्वाचा वदति तत् कर्मणा करोति यत् कर्मणा करोति तदभिसम्पद्यते ।

यह यजुर्वेद के ब्राह्मण का वचन है । जीव जिसका मन से ध्यान करता उसको वाणी से बोलता, जिसको वाणी से बोलता उसको कर्म से करता, जिसको कर्म से करता उसी को प्राप्त होता है । इससे क्या सिद्ध हुआ कि जो जीव जैसा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है । जब दुष्ट कर्म करने वाले जीव ईश्वर की न्यायरूपी व्यवस्था से दुःखरूप फल पाते तब रोते हैं और इसी प्रकार ईश्वर उनको रुलाता है, इसलिये परमेश्वर का नाम "रुद्र" है । (पृष्ठ ८)

भाष्य—वेदादि शास्त्रों में अनेक स्थलों पर परमात्मा का नाम रुद्र आया है, जैसे—

मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभिर्मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती ॥ ऋ० २।३३।४॥

अर्थ—हे दुष्टों के रुलाने वाले रुद्र परमात्मन् ! हम तुझे नमस्कारों से क्रोधित मत करें, बुरी स्तुति और साथ मिले हुए बुलाने से क्रोधित मत करें ।

एष हि खल्वात्मेशानः शम्भुर्भवो रुद्रः प्रजापतिः ॥ मैत्र्यु० ६ । ८ ॥

इस उपनिषद् वाक्य में भी परमात्मा का नाम रुद्र बताया गया है ।

नारायण–मूल–

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।

ता तदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥ मनु०(अ०१। श्लोक१०)

जल और जीवों का नाम नारा है वे अयन अर्थात् निवासस्थान हैं जिसका इस लिये सब जीवों म व्यापक परमात्मा का नाम "नारायण" है । (पृष्ठ ८)

भाष्य—मैत्र्युपनिषद् का वाक्य है—

प्राणो हंसः शास्ता विष्णुर्नारायणोऽर्कः सविता धाता विधाता सम्राडिन्द्र इन्दुरिति ॥ मैत्र्यु० ६ । ८ ॥

स्कन्ध उपनिषद् में श्लोक है—

विरिञ्चिनारायणशंकरात्मकं नृसिंह देवेश तवप्रसादतः ।

अचिन्त्यमव्यक्तमव्ययं वेदात्मकं ब्रह्म निजं विजानते ॥ स्कन्ध उ० १४ ॥

इन दोनों उपनिषदों में परमात्मा के अनेक नामों के साथ नारायण नाम भी बताया गया है । नारायण परमात्मा का नाम है इसे सब मानते हैं ।

प्रश्न—"आपो नारा............" इत्यादि श्लोक का अर्थ स्वामी जी ने अशुद्ध किया है । उस का अर्थ यह है—"जल को नारा इस कारण कहते हैं कि नर जो परमात्मा उस से उत्पन्न हुआ है, वह जल है प्रथम स्थान जिस का, इस कारण परमात्मा को नारायण कहते हैं ।

उत्तर—श्री स्वामी जी ने श्लोक का शब्दार्थ नहीं किया, केवल अभिप्राय ही बताया है । स्वामी जी का भाव मुख्य रूप से यह है कि मनु महाराज ने नारायण नाम परमात्मा का माना है और इस बात को वादी भी स्वीकार करता है । परन्तु वादी का अपना अर्थ संगत नहीं है, परमात्मा का प्रथम स्थान जल हो, इस का क्या अर्थ हो सकता है? इस से यह भाव निकलता है कि परमात्मा के रहने का मुख्य स्थान जल है। परमात्मा सर्वव्यापक है, इस लिये यह कहना कि उस के रहने का मुख्य स्थान जल है, ठीक नहीं हो सकता। वादी ने जो अर्थ किया है उस में वह स्वीकार करता है कि श्लोक के एक भाग का अर्थ है कि जल को नारा कहते हैं, और दूसरे में मनु ने इस कथन के लिये हेतु दिया है, उस भाग के अर्थ की इस स्थान पर आवश्यकता नहीं है, क्योंकि स्वामी जी ने केवल यह दिखाना है कि मनु भी परमात्मा का नाम नारायण मानता है, उस से अगले भाग का अर्थ श्री स्वामी जी महाराज ने किया है कि "वे निवासस्थान हैं जिस का" 'ता तदस्ययानं' का शब्दार्थ हो ही यही सकता है । अब इतने अर्थ से नारायण नाम पूरा मनु के श्लोक से निकल आया। इस प्रकरण में इतने ही अर्थ ही आवश्यकता है ॥

चन्द्र—मूल—(चदि आह्लादे) इस धातु से " चन्द्र " शब्द सिद्ध होता है। " यश्चन्दति चन्दयति वा स चन्द्रः " जो आनन्दस्वरूप और सब को आनन्द देने वाला है इस लिये ईश्वर का नाम " चन्द्र" है। (पृष्ठ ८)

भाष्य—इस विषय के पोषक कुछ प्रमाण नीचे दिये जाते हैं—

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥ यजु० ३२ । १ ॥

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदापस्तत्प्रजापतिः ॥ श्वेता० ४ । २ ॥

इन दोनों वाक्यों में परमात्मा का नाम चन्द्रमा भी बताया गया है।

चन्द्रमा वै ब्रह्म ॥ ऐत० ब्रा० २ । ४१ ॥

अर्थ—चन्द्रमा ब्रह्म है।

हन्तेति चन्द्रमा ओमित्यादित्यः ॥ जै० उ० ३ । ६ । २ ॥

यहा परमात्मा का नाम चन्द्रमा बताया गया है।

मङ्गल–मूल–(मगि गत्यर्थक) धातु से " मङ्गेरलच् " इस सूत्र से " मङ्गल " शब्द सिद्ध होता है । " यो मङ्गति मङ्गयति वा स मङ्गलः " जो आप मङ्गलस्वरूप और सब जीवों के मङ्गल का कारण है इस लिए उस परमेश्वर का नाम " मङ्गल " है। (पृष्ठ ८)

भाष्य—हमारे सनातन धर्मी भाईयों के परम मान्य ग्रन्थ विष्णुसहस्रनाम में परमात्मा का नाम मङ्गल बताया गया है—

प्रभूतस्त्रिककुद्धाम पवित्रं मङ्गलं परम् ॥ विष्णु स० ना० ७ ॥

शुक्र–मूल–"बृहस्पपति" शब्द का अर्थ कह दिया। (ईशुचिर पूतीभावे) इस धातु से "शुक्र" शब्द सिद्ध हुआ है। " यः शुच्यति शोचयति वा स शुक्रः " जो अत्यन्त पवित्र और जिस के सङ्ग से जीव भी पवित्र हो जाता है इस लिये ईश्वर का नाम " शुक्र " है। (पृष्ठ ८)

भाष्य—यजुर्वेद का मन्त्र है—

सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविर ँ शुद्धमपापविद्धं कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः ॥ यजु० ४० । ८ ॥

इस मन्त्र में बताया गया है कि वह परमात्मा सर्वव्यापक है शुक्र, शरीररहित, फोड़े फुनसी से रहित, नाड़ी और नस के बन्धन से रहित, शुद्ध स्वरूप, निष्पाप; और कवि है इत्यादि ।

कठ उपनिषद् का वचन है—

तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ॥ कठ० उ० ५ । ८ ॥

अर्थ—वह ही शुक्र, वह ब्रह्म, और वह ही अमृत कहलाता है।

शनैश्चर—मूल—(चर गतिभक्षणयोः) इस धातु से "शनैस्" अव्यय उपपद होने से "शनैश्चर" शब्द सिद्ध हुआ है। "यः शनैश्चरति स शनैश्चरः" जो सब में सहज से प्राप्त धैर्यवान् है इस से उस परमेश्वर का नाम "शनैश्चर" है। (पृष्ठ ८)

भाष्य—सनातन धर्मी भाईयों के प्रामाणिक स्तोत्र 'सूर्यशतनाम' में शनैश्चर शब्द को इन्द्र, विष्णु, रुद्र आदि नामों का पर्याय बताया है और इन्द्र, विष्णु आदि नाम परमात्मा के हैं, यह ऊपर दिखाया ही जा चुका है—

इन्द्रो विवस्वान् दीप्तांशुः शुचिः सौरिः शनैश्चरः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कन्धो वै वरुणो यमः ॥ ३ ॥

इन नामों में से कुछ नामों को तो सम्भवतः कोई महाशय कह दें कि ये नाम भौतिक सूर्य के हैं, परन्तु ब्रह्मा, वरुण, स्कन्ध आदि नाम भौतिक सूर्य के कहीं साहित्य में नहीं आते। ये सब नाम यदि किसी एक के हो सकते हैं तो वह परमात्मा ही है।

केतु—मूल—(कित निवासे रोगापनयने च) इस धातु से "केतु" शब्द सिद्ध होता है "यः केतयति चिकित्सति वा स केतुरीश्वरः" जो सब जगत् का निवासस्थान सब रोगों से रहित और मुमुक्षुओं को मुक्ति समय में सब रोगों से छुड़ाता है इस लिये उस परमात्मा का नाम "केतु" है। (पृष्ठ९)

भाष्य—केतु शब्द वेद में अनेक स्थलों पर आता है। जैसे—

रायो बुध्नः सङ्गमनो वसूनां यज्ञस्य केतुर्मन्मसाधनो वेः ।
अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ऋ० १।९६।६॥

अर्थ—(वेः) मनोहर (यज्ञस्य) अच्छे प्रकार समझाने योग्य विद्या बोध को (बुध्नः) जो पदार्थों का वेद द्वारा बोध कराता है और (केतुः) सब व्यवहारों को अनेक प्रकार से चिताने वाला (मन्मसाधनः) जो विचार युक्त कार्यों को सिद्ध करने वाला है (रायः) विद्या, चक्रवर्त्ती राज्य धन का और (वसूनां) अग्नि, पृथिवी आदि आठ वसुओं का (संगमनः) अच्छे प्रकार प्राप्त कराने वाला है वा (अमृतत्वम्) मोक्ष मार्ग को (रक्षमाणासः) राखे हुए (देवाः) आप्त विद्वान् जन जिस (द्रविणोदाम्) धन आदि पदार्थ देने वाले के समान सब जगत् को देने हारे (अग्निम्) परमेश्वर को (धारयन्) धारण करते वा कराते हैं (एनम्) उसी को तुम लोग इष्टदेव जानो।

मो षु णो अत्र जुहुरन्त देवा मा पूर्वे अग्ने पितरः पदज्ञाः ।

अर्थ—(अग्ने) हे विद्वन् ! जो (पुराण्योः) अनादि काल से सिद्ध बिजुली और प्रकाश रूप प्रकृतियों (सद्मनोः) सब के रहने के स्थानों और (देवानाम्) पृथिवी आदि और जीवों के (अन्तः) मध्य में (केतुः) ज्ञानस्वरूप (महत्) बड़ा (एकम्) एक अद्वितीय ब्रह्म (असुरत्वम्) प्राणों में क्रीड़ा करता हुआ है (अत्र) इस ब्रह्म के व्यवहारों में (नः) हम लोगों को (पदज्ञाः) प्राप्त होने योग्य के जानने वाले (पूर्वे) प्रथम उत्पन्न हुए (पितरः) विज्ञान वाले (मो) नहीं (जुहुरन्त) प्रहसन करें और (देवाः) विद्वान् लोग इस विज्ञान रूप व्यवहार में हम लोगों को (मा) नहीं (सु) उत्तम प्रकार सहें, इस प्रकार आप भी यह जान के आप को ये लोग न सहें।

इन दोनों मन्त्रों में केतु शब्द परमात्मा का वाचक है—

यज्ञ—मूल—(यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु) इस धातु से "यज्ञ" शब्द सिद्ध होता है। "यज्ञो वै विष्णु" यह ब्राह्मणग्रन्थ का वचन है। "यो यजति विद्वद्भिरिज्यते वा स यज्ञः" जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है और ब्रह्मा से ले के सब ऋषि मुनियों का पूज्य था, है और होगा इससे उस परमात्मा का नाम "यज्ञ" है क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है। (पृष्ठ ९)

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥ यजु० ३१। ६ ॥

अर्थ—(तस्मात् यज्ञात् सर्वहुतः) उस सर्वपूज्य सब कुछ सब को देने वाले परमात्मा से (पृषदाज्यम्) दधि घृत आदि भोग्य पदार्थ (सम्भृतम्) उत्पन्न हुआ। (ये) जो (आरण्याः) वन के सिंह शूकर आदि (च) और (ग्राम्याः) ग्राम में होने वाले गाय भैंस आदि हैं (तान्) उन (वायव्यान्) वायु के समान वेग आदि गुणों वाले सब (पशून्) पशुओं को (चक्रे) उत्पन्न किया।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥यजु० ३१।१६॥

अर्थ—जो (देवाः) विद्वान् लोग (यज्ञेन) ज्ञान यज्ञ से (यज्ञम्) पूजनीय परमात्मा की (अयजन्त) भक्ति से पूजा करते हैं (तानि) वह पूजा आदि (धर्माणि) धारणा रूप धर्म (प्रथमानि) अनादि रूप से मुख्य (आसन्) हैं (ते) वे विद्वान् (महिमानः) महत्व से युक्त हुए (यत्र) जिस सुख में (पूर्वे) इस समय से पूर्व हुए (साध्याः) साध्य (देवाः) विद्वान् (सन्ति) हैं उस (नाकम्) सब दुःखों से रहित मुक्ति सुख को ही (सचन्त) प्राप्त होते हैं।

इस मन्त्र पर भाष्य करता हुआ उवट लिखता है—

"एवं योगिनोऽपि दीपनाद्देवा यज्ञेन समाधिना नारायणाख्यं ज्ञानरूपमयजन्त" ॥

अर्थात् योगी लोग नारायण नामक ज्ञान स्वरूप परमात्मा की पूजा करते हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों में आता है—

ब्रह्म यज्ञः ॥ शत० ३। १४। २९॥

ब्रह्म हि यज्ञः ॥ शत० ५। ३। २। ४॥

ब्रह्म वै यज्ञः ॥ ऐत० ब्रा० ७। २२॥

अर्थ—ब्रह्म यज्ञ है।

होता—मूल—(हु दानाऽदनयोः आदाने चेत्येके) इस धातु से " होता " शब्द सिद्ध हुआ है " यो जुहोति स होता " जो जीवों को देने योग्य पदार्थों का दाता और ग्रहण करने योग्यों का ग्राहक है इससे उस ईश्वर का नाम " होता " है। (पृष्ठ ९)

भाष्य—होता परमात्मा का नाम है, देखो वेद में—

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम् ॥ ऋ० १। १। १॥

अर्थ—मैं प्रकाशस्वरूप, पुरोहित, यज्ञ के देव, ऋत्विज होता और रत्नों के धारण करने वाले परमात्मा की स्तुति करता हूं।

इस मन्त्र की व्याख्या ऋषि दयानन्द ने अपने ऋग्वेद भाष्य में विस्तार से कर दी है।

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्॥ यजु० १०। २४॥

अर्थ—(हंसः) सब पदार्थों को स्थूल करने वाला परमात्मा (शुचिषत्) पवित्र पदार्थों में स्थित (वसुः) निवास करने और कराने वाला (अन्तरिक्षसत्) अन्तरिक्ष में स्थित (होता) सब पदार्थों के देने, ग्रहण करने और प्रलय करने वाला (वेदिषत्) पृथिवी में व्यापक (अतिथिः) अभ्यागत के समान सत्कार करने योग्य (दुरोणसत्)घर में स्थित है।

इस मन्त्र पर भाष्य करता हुआ उवट इस मन्त्र के विषय में लिखता है—

" सप्रपञ्चपरब्रह्माभिधायिनी अतिच्छन्दा अतिजगतीति।"

अर्थात्—वह स्वीकार करता है कि यह मन्त्र परब्रह्म विषयक है। चाहे अपने विचार के अनुसार उसने सप्रपञ्च शब्द लिख दिया है।

बन्धु—मूल—(बन्ध बन्धने) इससे " बन्धु " शब्द सिद्ध होता है " यः स्वस्मिन् चराचरं जगद्बध्नाति बन्धुवद्धर्मात्मनां सुखाय सहायो वा वर्त्तते स बन्धुः" जिसने अपने में सब लोक लोकान्तरों को नियमों से बद्ध कर रक्खे और सहोदर के समान सहायक है इसी से अपनी २ परिधि वा नियम का उल्लंघन नहीं कर सकते। जैसे भ्राता भाईयों का सहायकारी होता है वैसे परमेश्वर भी पृथिव्यादि लोकों के धारण रक्षण और सुख देने से " बन्धु " संज्ञक है। (पृष्ठ ९)

भाष्य—परमात्मा सब का बन्धु है, वेद कहता है—

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता ॥ यजु० ३२ । १० ॥

अर्थ—वह परमात्मा हमारा बन्धु, पिता और विधाता है।

स नः पिता जनिता स उत बन्धुः ॥ अथर्व० २ । १ । ३॥

अर्थ—वह हमारा उत्पादक पिता है और वह बन्धु है।

पिता—मूल—(पा रक्षणे) इस धातु से " पिता " शब्द सिद्ध हुआ है। "यः पाति सर्वान् स पिता " जो सब का रक्षक जैसे पिता अपने सन्तानों पर सदा कृपालु हो कर उन की उन्नति चाहता है वैसे ही परमेश्वर सब जीवों की उन्नति चाहता है इस से उस का नाम " पिता " है। (पृष्ठ ९)

भाष्य—अथर्व वेद का मन्त्र जो ऊपर बन्धु के प्रकरण में उद्धृत किया गया है, उस में परमात्मा को पिता भी कहा गया है। यजुर्वेद का मन्त्र है—

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामधा एक एव तं सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥१७।१७॥

अर्थ—जो हमारा पिता उत्पादक, सब मोक्ष सुखादि कामों का विधायक, सब भुवन, लोक, लोकान्तरों, स्थिति के स्थानों को यथावत् जानने वाला सब जात मात्र भूतों में विद्यमान है। जो दिव्य सूर्यादि लोक तथा इन्द्रियादि और विद्वानों का नाम व्यवस्थादि करने वाला अद्वितीय है। परमात्मा के सम्यक् प्रश्नोत्तर आदि करने में विद्वान् वेदादि शास्त्र और प्राणी मात्र प्राप्त हो रहे हैं।

पितामह—मूल—" यः पितॄणां पिता स पितामहः " जो पिताओं का भी पिता है इस से उस परमेश्वर का नाम "पितामह" है। (पृष्ठ ९)

भाष्य—गीता का श्लोक है—

पिताऽहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोंकारः ऋक्सामयजुरेव च ॥ गीता० ९ । १७ ॥

अर्थ—परमात्मा इस जगत् का पिता, माता, धारण करने वाला पितामह है, जानने योग्य, पवित्र ओंकार, ऋग्, साम और यजु है।

इस श्लोक में परमात्मा को पितामाह कहा गया है।

प्रपितामह—मूल— " यः पितामहानां पिता स प्रपितामाहः " जो पिताओं के पितरों का पिता है इस से परमेश्वर का नाम " प्रपितामह " है। (पृष्ठ ६)

भाष्य—गीता का एक श्लोक है—

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः ।
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ॥ गी० ११ । ३९ ॥

अर्थ—तू वायु, यम, अग्नि, वरुण, शशाङ्क, प्रजापति और प्रपितामह है। इस श्लोक में परमात्मा की स्तुति प्रपितामह कह कर की गई है।

माता—मूल—" यो मिमीते मानयति सर्वाञ्जीवान् स माता " जैसे पूर्णकृपायुक्त जननी अपने सन्तानों का सुख और उन्नति चाहती है वैसे परमेश्वर भी सब जीवों की बढ़ती चाहता है इस से परमेश्वर का नाम " माता " है। (पृष्ठ ९)

भाष्य—वेदादि शास्त्रों में परमात्मा को कई स्थलों पर माता कहा गया है, जैसे-

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अथा ते सुम्नमीमहे ॥ साम० उ० ४ । २ । १३ ॥

अर्थ—हे (वसो !) अन्तर्यामी रूप से सब में वास करने वाले प्रभो ! (शतक्रतो) हे जगतों के उत्पत्ति स्थिति प्रलय आदि कर्त्तः ! (त्वं हि नः पिता) आप ही हमारे पालक और जनक हैं (त्वं माता) हमारी मान करने वाली सच्ची माता भी आप ही (बभूविथ) हैं (अथ) इस लिए आप से ही (सुम्नम्) सुख को (ईमहे) हम मांगते हैं।

यः ककुभो निधारयः पृथिव्यामधि दर्शतः। स माता पूर्व्यं पदं तद्वरुणस्य सप्त्यं स हि गोपाः इवेर्यो नभन्तामन्यके समे ॥ ऋ० ८।४१।४ ॥

अर्थ—(पृथिव्याम् अधि) पृथिवी के ऊपर दर्शनीय और विज्ञेय (यः) जो परमात्मा (ककुभः) सम्पूर्ण दिशाओं को (निधारयः) धारण करता है (स माता) वही जगत् का निर्माता, पाता और संहर्ता है (वरुणस्य) उसी परमात्मा का (तत्पदम्) वह स्थान (पूर्व्यम्) पूर्ण और अति प्राचीन है और (सप्त्यम्) सब के जानने योग्य है (स हि) वही (गोपाः इव) गोपालक के समान जगत् का पालक है वह (इर्यः) सर्व श्रेष्ठ ईश्वर है, जिस से (समे) सब ही (अन्यके) शत्रु (नभन्ताम्) नष्ट हों।

आचार्य—मूल—(चर गतिभक्षणयोः) आङ्पूर्वक इस धातु से " आचार्य्य " शब्द सिद्ध होता है " य आचारं ग्राहयति सर्वा विद्या बोधयति स आचार्य ईश्वरः " जो सत्य आचार का ग्रहण कराने हारा और सब विद्याओं की प्राप्ति का हेतु होके सब विद्या प्राप्त कराता है इस से परमेश्वर का नाम " आचार्य " है। (पृष्ठ ९)

भाष्य—उपनयन संस्कार में आचार्य बालक से पूछता है—

कस्य ब्रह्मचार्यसि ?

तू किस का ब्रह्मचारी है।

बालक—भवतः—आप का ॥ पार० कां० २ ॥

आचार्य पूर्ण निरभिमानता और बालक की रक्षा के भाव से प्रेरित हो कर कहता है—

इन्द्रस्य ब्रह्मचार्यस्यग्निराचार्यस्तव ॥ पार० कां० २ कं० २ ॥

अर्थात् परमैश्वर्यवान् परमात्मा का तू ब्रह्मचारी है, प्रकाशस्वरूप परमात्मा तेरा आचार्य है।

इस सूत्र-ग्रन्थ में परमात्मा को आचार्य कहा गया है।

गुरु—मूल—(गॄ शब्दे) इस धातु से " गुरु " शब्द बना है। " यो धर्म्यान शब्दान् गृणात्युपदिशति स गुरुः " ॥

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ योग सू० । समाधिपादे सू० २६ ॥

यह योगसूत्र है। जो सत्यधर्मप्रतिपादक, सकल विद्यायुक्त वेदों का उपदेश करता, सृष्टि की आदि में अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा और ब्रह्मादि गुरुओं का भी गुरु और जिस का नाश कभी नहीं होता इस लिए उस परमेश्वर का नाम " गुरु " है। (पृष्ठ ९)

अज—मूल—(अज गतिक्षेपणयोः, जनी प्रादुर्भावे) इन धातुओं से ' अज ' शब्द बनता है " योऽजति सृष्टिं प्रति सर्वान् प्रकृत्यादीन् पदार्थान् प्रक्षिपति जानाति वा कदाचिन्न जायते सोऽजः " जो सब प्रकृति के अवयव आकाशादि भूत परमाणुओं को यथायोग्य मिलाता, शरीर के साथ जीवों का सम्बन्ध करके जन्म देता और स्वयं कभी जन्म नहीं लेता इस से उस ईश्वर का नाम " अज " है। (पृष्ठ ९)

भाष्य—इस विषय में कुछ प्रमाण नीचे दिए जाते हैं—

शं नो अज एअपाद्देवोऽस्तु ॥ ऋ० ७ । ३५ । १३ ॥

इस मंत्र में प्रार्थना की गई है कि वह अज-अजन्मा परमात्मा हमारे लिये कल्याणकारी हो।

मनसा परिक्रमा मन्त्रों में आता है—

उदीची दिक्सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिता शनिरिषवः ॥

अथर्व० ३ । २७ । ४ ॥

अर्थ—उत्तर दिशा में सोम नाम वाला अधिपति परमात्मा जो कि अच्छे प्रकार से अज-अजन्मा है और जिस के बाण विद्युत् हैं।

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः ॥ मुण्ड० २ । १ । । २॥

अर्थ—वह परमात्मा दिव्य, अमूर्त, बाहिर और भीतर निरन्तर व्यापक और अज-अजन्मा है।

ब्रह्मा—मूल—(बृह बृहि वृद्धौ) इन धातुओं से "ब्रह्मा" शब्द सिद्ध होता है "योऽखिलं जगन्निर्माणेन बृहति वर्द्धयति स ब्रह्मा" जो सम्पूर्ण जगत् को रच के बढ़ता है इसलिये परमेश्वर का नाम "ब्रह्मा" है पृष्ठ ९)

भाष्य—ऋग्वेद में मन्त्र है—

इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषिरिन्द्रः पुरु पुरुहूतः ।
महान्महीभिः शचीभिः ॥ ऋ० ८ । १६ । ७॥

अर्थ—यह (इन्द्रः) परमात्मा (ब्रह्मा) सब से बड़ा होने से ब्रह्मा है (इन्द्रः ऋषिः) परमात्मा ही सर्वद्रष्टा होने से महाकवि है (इन्द्रः) वही इन्द्र (पुरु) बहुत प्रकार से (पुरुहूतः) बहुतों से आहूत है, वही (महीभिः) महान् (शचीभिः) सृष्टि आदि कर्म द्वारा (महान्) परम महान् है।

सामवेद में मन्त्र है—

सोमं राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे ।
आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥ साम० पू० १। २।१०।१॥

इस मन्त्र में परमात्मा के नाम सोम, राजा, वरुण, अग्नि, आदित्य, विष्णु, सूर्य, ब्रह्मा और बृहस्पति बताए गए हैं।

सत्य, ज्ञान, अनन्त—मूल—" सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म " यह तैत्तिरीयोपनिषद् का वचन है " सन्तीति सन्तस्तेषु सत्सु साधु तत्सत्यम् । यज्जानाति चराऽचरं जगत्तज्ज्ञानम् । न विद्यतेऽन्तोऽवधिर्मर्यादा यस्य तदनन्तम् । सर्वेभ्यो बृहत्त्वाद् ब्रह्म "। जो पदार्थ हों उनको सत् कहते हैं उन में साधु होने से परमेश्वर का का नाम सत्य है। जो सब जगत् का जानने वाला है इससे परमेश्वर का नाम " ज्ञान " है। जिसका अन्त अवधि मर्यादा अर्थात् इतना लम्बा, चौड़ा छोटा, बड़ा है ऐसा परिमाण नहीं है इस लिये परमेश्वर का नाम " अनन्त " है। (पृष्ठ १०)

भाष्य-सत्य-प्रमाण—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावाहम् ॥ ओ खं ब्रह्म ॥ यजु० ४० । १७॥

इस मन्त्र में जो सत्य शब्द आया है उस के विषय में उवट ने लिखा है—

सत्यस्याविनाशिनः पुरुषस्य..............................

'ओमिति नामनिर्देश आकाशस्वरूपं ब्रह्म ध्यायेत ॥

अर्थात् सत्य शब्द अविनाशी ब्रह्म का वाचक है।

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः।

देवो देवेभिरागमत् ॥ ऋ० १।१।१५॥

अर्थ—वह परमात्मा अग्नि, होता, कवि, क्रतु अर्थात् सब जगत् का जनक सत्य अर्थात् अविनाशी चित्रश्रवस्तम अर्थात् आश्चर्य श्रवणादि आश्चर्य गुण आश्चर्यशक्ति आश्चर्य स्वरूपवान् है, दिव्य गुणों सहित हमारे हृदय में प्रकट हो।

सत्यं ब्रह्म ॥ शत० १४।८।५।१॥

अर्थ—ब्रह्म सत्य है।

एवं हि खल्वात्मेशानः शम्भुर्भवो रुद्रः प्रजापतिर्विश्वसृग्घिरण्यगर्भः सत्यं प्राणो हंसः॥ मैत्र्यु० ६।८॥

नित्यः शुद्धो बुद्धः सत्यः मुक्तो निरञ्जनो विभुरद्वयानन्दः परःप्रत्यगेकरसः॥

नृसिंहोत्तर ता० ९॥

इन उपनिषद् वाक्यों में परमात्मा का नाम सत्य बताया गया है।

ज्ञान—गौड़पादाचार्य की कारिका है—

अकल्पकमजं ज्ञानं ज्ञेयाभिन्नं प्रचक्षते।

ब्रह्मज्ञेयमजं नित्यमजेनाजं विबुध्यते ॥ ३।३३॥

इस कारिका में गौड़पाद ने अपने सिद्धान्त के अनुसार अद्वैतवाद का निरूपण किया है, और यह स्वीकार किया है कि ज्ञान परमात्मा का नाम है।

शंकर स्वामी ने भी इस कारिका पर भाष्य करते हुए ज्ञान नाम परमात्मा का ही बताया है और इस बात की पुष्टि में "विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" और "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" आदि वाक्य उद्धृत किये हैं।

अनन्त—प्रमाण—

त्रिरस्य ता परमा सन्ति सत्या स्पार्हा देवस्य जनिमान्यग्नेः।

अनन्ते अन्तः परिवीत आगाच्छुचिः शुक्रो अर्यो रोरुचानः॥ऋ०४।१।७॥

अर्थ—(अग्नेः) अग्नि के सदृश जिस उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाले इस राजा के जो (सत्या) उत्तम व्यवहारों में श्रेष्ठ (स्पार्हा) अभिकांक्षा करने के योग्य (परमा) उत्तम (जनिमानि) जन्म (सन्ति) हैं और जो (रोरुचानः) अत्यन्त प्रकाशमान (अर्यः) सब का स्वामी (शुक्रः) शीघ्र करने वाला (शुचिः) पवित्र

(परिवीतः) जिसके सब ओर उत्तम गुण, कर्म और स्वभाव व्याप्त हैं वह (अनन्ते) परमात्मा विषयक (अन्तः) मध्य में (ता) उन को (त्रिः) तीन वार (आ, अगात्) प्राप्त होता है।

अनन्तं विततं पुरुत्रानन्तमन्तवच्चासमन्ते ।
ते नाकपालश्चरति विचिन्वन् विद्वान् भूतमुत भव्यमस्य ॥

अथ० १० । ८ । १२ ॥

अर्थ - (अनन्तम्) अन्तरहित (पुरुत्रा) बहुत प्रकार (विततम्) फैला हुआ [ब्रह्म] (नाकपालः) मोक्ष सुख का स्वामी [परमात्मा] (समन्ते) परस्पर सीमा-युक्त (ते) उन दोनों अर्थात् (अनन्तम्) अन्त रहित कारण (च) और (अन्तवत्) अन्त वाले कार्य जगत् को (विचिन्वन्) अलग अलग करता हुआ और (अस्य) इस [ब्रह्माण्ड] का (भूतम्) भूत काल (उत) और (भव्यम्) भविष्यत्काल को जानता हुआ (चरति) विचरता है।

अनादि—मूल—(डुदाञ् दाने) आङ्पूर्वक इस धातु से " आदि " शब्द और नञ्पूर्वक " अनादि " शब्द सिद्ध होता है। " यस्मात् पूर्वं नास्ति परं चास्ति स आदिरित्युच्यते [महाभाष्य १ । १ । २१] न विद्यते आदिः कारणं यस्य सोऽनादिरीश्वरः "। जिसके पूर्व कुछ न हो और परे हो, उस को आदि कहते हैं । जिस का आदि कारण कोई भी नहीं है इस लिये परमेश्वर का नाम अनादि है। (पृष्ठ १०)

भाष्य—परमात्मा अनादि है, इस को सब आस्तिक मानते हैं, उपनिषद् में आता है—

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥

कठ० ३ । १५ ॥

अर्थ—यहां परमात्मा को अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय, अरस, नित्य, गन्ध-रहित और अनादि, अनन्त आदि नामों से स्मरण किया गया है।

आनन्द—मूल—(टुनदि समृद्धौ) आङ्पूर्वक इस धातु से " आनन्द " शब्द बनता है " आनन्दन्ति सर्वे मुक्ता यस्मिन् यद्वा यः सर्वाञ्जीवानानन्दयति स आनन्दः " जो आनन्दस्वरूप जिस में सब मुक्त जीव आनन्द को प्राप्त होते और जो सब धर्मात्मा जीवों को आनन्दयुक्त करता है इससे ईश्वर का नाम " आनन्द " है। (पृष्ठ १०)

भाष्य—बृहदारण्यकोपनिषद् का प्रमाण है—

विज्ञानमानन्दं ब्रह्म ॥ ३ । ९ । २८ ॥

अर्थात्—विज्ञान और आनन्द परमात्मा के नाम हैं अथवा परमात्मा विज्ञान-स्वरूप और आनन्दस्वरूप है।

तैत्तिरीयोपनिषद् में पहले कहा है—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभि-संविशन्ति, तद्विजिज्ञास्व, तद्ब्रह्मेति ॥ ३ । १ ॥

अर्थात् जिससे ये सब भूत प्राणी उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न हो कर जीते हैं, जिस को प्राप्त होते हैं और जिस में प्रविष्ट होते हैं, उस को जानो, वह ब्रह्म है।

फिर आगे उपनिषत्कार निर्णय करते हैं कि वह कौन है—

आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति ॥ तैत्ति० ३ । ६ ॥

अर्थात्—इस मन्त्र में यह बताया गया है कि आनन्द से ही यह सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न हो कर आनन्द के आश्रित ही जीवित रहते हैं, आनन्द को ही प्राप्त होते हैं और आनन्द में प्रवेश करते हैं। अर्थात् वह ब्रह्म आनन्द ही है।

आगे इसी उपनिषद् में स्पष्ट कहा है—

आनन्दं ब्रह्मेति व्याजानात् ॥ तैत्ति० ३ । ६ ॥

अर्थात् आनन्द को ब्रह्म जाने।

सत्—मूल—(अस भुवि) इस धातु से " सत् " शब्द सिद्ध होता है " यदस्ति त्रिषु कालेषु न बाध्यते तत्सद् ब्रह्म " जो सदा वर्त्तमान अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान कालों में जिस का बाध न हो उस परमेश्वर को " सत् " कहते हैं। (पृष्ठ १०)

भाष्य—छान्दोग्योपनिषद् का प्रमाण है—

तद्यत्सत्तदमृतम् ॥ छां० ८ । ३ । ५ ॥

इस पर शंकर स्वामी अपने भाष्य में लिखते हैं—

तत्तत्र यत्सकारस्तदमृतं सद्ब्रह्मामृतवाचकत्वादमृत एव सकारस्तकारान्तो निर्दिष्टः ॥

अर्थात् सद्ब्रह्म ही अमृत वाचक है।

यजुर्वेद में आता है—

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहासद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्।
तस्मिन्निदꣳ संचविचैति सर्वꣳ स ओतश्च प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥३२।८॥

अर्थ—(वेनः) ब्रह्म ज्ञानी पुरुष (तत्) उस ब्रह्म को जो (गुहानिहितम्)

बुद्धिरूपी गुफ़ा में स्थित तथा (सत्) तीन कालों में वर्तमान, नित्य है, उस को (पश्यत्) प्रत्यक्ष अनुभव करता है (यत्र) जिस ब्रह्म में (विश्वम्) सारा संसार (एक नीडम्) एक आश्रय को (भवति) प्राप्त होता है, (तस्मिन्) उसी ब्रह्म में (इदं सर्वम्) यह सब जगत् (सम् एति च) प्रलय काल में संगत होता अर्थात् लीन होता है (वि एति च) और उत्पत्ति काल में पृथक् २ रूप को भी प्राप्त होता है (यः) वह जगदीश (विभूः) विविध प्रकार से व्याप्त हुआ (प्रजासु) प्रजाओं में (ओतः प्रोतः च) ओत और प्रोत है।

चित्–मूल– (चिती संज्ञाने) इस धातु से " चित् " शब्द सिद्ध होता है। "यश्चेतति चेतयति संज्ञापयति सर्वान् सज्जनान् योगिनस्तच्चित्परं ब्रह्म"। जो चेतनस्वरूप सब जीवों को चिताने और सत्याऽसत्य का जनानेहारा है इसलिये उस परमात्मा का नाम " **चित्** " है।

इन तीनों शब्दों के विशेषण से परमेश्वर को **"सच्चिदानन्दस्वरूप"** कहते हैं। (पृष्ठ १०)

भाष्य—परमात्मा का स्वरूप सच्चिदानन्द है, इस को सब आस्तिक लोग मानते हैं। रामोत्तरतापिनी उपनिषद् में आता है—

एतद् ब्रह्मात्मिकाः सच्चिदानन्दाख्या इत्युपासितव्यम् ॥ २ ॥

प्रश्न—सच्चिदानन्द के सत्, चित्, आन्द स्वरूपों से उस का अनेक रूप होना सिद्ध क्यों नहीं हुआ? क्या तुम ईश्वर को अनेक रूप मानते हो वा एक ही? यदि एक ही रूप कहो तो सच्चिदानन्द कहना नहीं बनेगा, और अनेक रूप कहो तो बहुरूपिया मानना पड़ेगा, तब उसके सगुण साकार आदि रूप को मानना क्यों नहीं पड़ेगा? 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयत' इत्यादि श्रुतियों से साफ़ २ उस का बहुरूप होना सिद्ध है। इस का सत्य उत्तर क्या है?

उत्तर— संसार में बहुरूपिया उस को कहते हैं जो एक समय में एक सेठ का रूप बना कर संसार के सामने आता है, दूसरे में एक साधु का रूप बना लेता है, और तीसरे समय में एक सिपाही का। वह जिस समय साधु के रूप में है, उस समय उस में सेठ और सिपाही के रूप का अभाव है, और जिस समय सिपाही के रूप में है, उस समय उस में सेठ और साधु के रूप का अभाव है। वास्तव में तीनों में से उसका कोई भी रूप स्थिर नहीं क्योंकि तीनों ही रूप उस के लिये स्वाभाविक नहीं हैं। जो रूप उस के लिये स्वाभाविक है, यदि वह उस रूप में रहे तब उसे कोई बहुरूपिया नहीं कहता। सत्, चित्, और आनन्द ये तीनों ही रूप परमात्मा में एक साथ रहते हैं और सदा रहते हैं, और उस के स्वाभाविक रूप हैं, इस लिये उसे बहुरूपिया नहीं कहा जा सकता।

यदि एक पदार्थ के अनेक गुण और अनेक धर्म होने से उस का अनेक रूप होना

सिद्ध होता है, तो संसार का प्रत्येक पदार्थ अनेक रूप है जैसे आत्मा के इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, ज्ञान, प्रयत्न ये सब गुण हैं, इस से आत्मा भी अनेक रूपों वाला मानना पड़ेगा। एक गौ के लम्बाई, चौड़ाई, सफ़ेदी, सास्नावत्व, सीङ्ग वाली होना आदि गुण और धर्म हैं, इस से वह गौ भी अनेक रूप हो गई। यदि आप की परिभाषा में यही अनेक रूप है, तो परमात्मा अनन्त गुणों वाला होने से आप की परिभाषा के अनुसार अनन्त रूपों वाला है। परन्तु इस से अगली बात आप की परिभाषा भी सिद्ध करने में अशक्त है। क्योंकि परमात्मा सच्चिदानन्दादि अनेक रूप वाला है, इस लिये उसे साकार मान लेवें, ऐसा क्यों? यह आप की बात ऐसी ही है कि क्योंकि यज्ञदत्त व्याकरण, न्याय, वेदान्त आदि विषयों का पण्डित है, इस लिये यह भी मान लो कि वह चोरी करने में भी सिद्धहस्त है। जैसे यज्ञदत्त को बिना किसी हेतु के केवल व्याकरण आदि विषयों का पण्डित होने मात्र से ही चोरी में सिद्धहस्त नहीं माना जा सकता, इसी तरह से परमात्मा को बिना किसी हेतु के केवल सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त होने मात्र से साकार नहीं माना जा सकता।

'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' का अर्थ परमात्मा अनेक गुणों से युक्त है, ऐसा होने पर भी परमात्मा साकार सिद्ध नहीं हो सकता।

नित्य—मूल—"यो नित्यध्रुवोऽचलोऽविनाशी स नित्यः"। जो निश्चल अविनाशी है सो नित्य शब्दवाच्य ईश्वर है। (पृष्ठ १०)

भाष्य—आर्ष ग्रन्थों में परमात्मा को नित्य कहा गया है, जैसे—

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्॥ कठ० ५।१३॥ श्वेता० ६।१३॥

अर्थ—वह नित्यों में नित्य और चेतनों में चेतन है।

नित्यं विभुं सर्वगतम्॥ मुण्ड० १।१।६॥

इस उपनिषद् वाक्य में उस को नित्य, विभु और सर्वव्यापक कहा गया है। गौड़पादाचार्य अपनी एक कारिका में कहते हैं—

विश्वो हि स्थूलभुङ् नित्यं तैजसः प्रविविक्तभुक्॥

इस में परमात्मा को नित्य कहा गया है।

शुद्ध—मूल—(शुन्ध शुद्धौ) इस से "शुद्ध" शब्द सिद्ध होता है। "यः शुन्धति सर्वान् शोधयति वा स शुद्ध ईश्वरः" जो स्वयं पवित्र सब अशुद्धियों से पृथक् और सब को शुद्ध करने वाला है इस से उस ईश्वर का नाम शुद्ध है। (पृष्ठ १०)

भाष्य—वेद मन्त्र है—

सर्पयगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्॥ यजु० ४०।८॥

अर्थात्—वह परमात्मा सर्वव्यापक पराक्रमस्वरूप, शरीर रहित, फोड़े फुनसी से रहित, नाड़ी और नस के बन्धन से रहित शुद्ध और सब पापों से रहित है।

बुद्ध—मूल—(बुध अवगमने) इस धातु से " क्त " प्रत्यय होने से " बुद्ध " शब्द सिद्ध होता है। " यो बुद्धवान् सदैव ज्ञाताऽस्ति स बुद्धो जगदीश्वरः " जो सदा सब को जाननेहारा है इससे ईश्वर का नाम " बुद्ध " है। (पृष्ठ १०)

भाष्य—नृसिंहोत्तर तापिनी उपनिषद् का वाक्य है—

नित्यः शुद्धो बुद्धः सत्यः मुक्तो निरञ्जनो विभुरद्वयानन्दः परः प्रत्यगेकरसः॥

नृसिंह० ९ ॥

अर्थात्—वह नित्य , शुद्ध , बुद्ध , अविनाशी , मुक्त स्वरूप , निरञ्जन , सर्वव्यापक , अद्वितीय , आनन्द और सदा एकरस रहने वाला है।

मुक्त—मूल—(मुच्लृ मोचने) इस धातु से " मुक्त " शब्द सिद्ध होता है। " यो मुञ्चति मोचयति वा मुमुक्षून् स मुक्तो जगदीश्वरः " जो सर्वदा अशुद्धियों से अलग और सब मुमुक्षुओं को क्लेश से छुड़ा देता है इसलिये परमात्मा का नाम " मुक्त " है। (पृष्ठ १०)

भाष्य—परमत्मा नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव है , इस को सब मानते हैं , ऊपर जो प्रमाण 'बुद्ध' के प्रकरण में दिया गया है , उस में मुक्त नाम भी आता है।

प्रश्न—'मुञ्चति मोचयतीति मुक्तः' यह निर्वचन अशुद्ध है।

उत्तर—इस में क्या अशुद्धि है? इस के अशुद्ध होने में कौन सा प्रमाण है? केवल आप का कहना ही इस में प्रमाण नहीं माना जा सकता। परन्तु स्वामी जी का निर्वचन निम्न लिखित रीति से सर्वथा शुद्ध है—

'मुञ्चति' अकर्मक है और 'मोचयति' सकर्मक है। इन दोनों अर्थों में मुच् धातु-से 'क्त' प्रत्यय नीचे लिखे ढङ्ग पर आ जाता है—

अकर्मक—गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च ॥३।४।७२॥

अर्थात् गत्यर्थकों, अकर्मकों और इन धातुओं से ' क्त ' प्रत्यय हो जाता है।

सकर्मक—महाभाष्यकार ने—कृत्यल्युटो बहुलम् ॥ ३ । ३ । ११३ ॥ पर लिखा है कि—कृतो बहुलमिति वक्तव्यम् पादहारकाद्यर्थम् ॥ अर्थात् कृत् प्रत्यय सारे ही बहुल कर के होते हैं, नहीं तो पादहारकादि सिद्ध नहीं हो सकते, इन को सिद्ध करने के लिये दूसरे अर्थों में भी कृत् प्रत्यय हो जायंगे।

इस से स्पष्ट है कि श्री स्वामी जी का निर्वचन सर्वथा शुद्ध है।

नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव–मूल–" अतएव नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावो जगदीश्वरः "
इसी कारण से परमेश्वर का स्वभाव नित्यशुद्ध-[बुद्ध]मुक्त है। (पृष्ठ १०)

निराकार—निर् और आङ् पर्वक (डुकृञ्करणे) इस धातु से " निराकार " शब्द सिद्ध होता है। "निर्गत अकारात्स निराकार:"। जिसका आकार कोई भी नहीं और न कभी शरीर धारण करता है इसलिये परमेश्वर का नाम " निराकार " है। (पृष्ठ १०)

भाष्य—यजुर्वेद के मन्त्र "सपर्यगाच्छुक्रमकायम्" आदि में परमात्मा को निराकार बताया गया है। महीधर भी इस मन्त्र के अर्थों में स्वीकार करता है कि परमात्मा स्थूल, सूक्ष्म और लिङ्ग, तीनों प्रकार के शरीरों से रहित है।

इस विषय में सनातन धर्मियों के कुछ प्रामाणिक ग्रन्थों से प्रमाण दिए जाते हैं—

निराधारो निराकारो निराभासो निराश्रयः॥ गोपा ०सह ०८९॥
निष्कलं निर्गुणं शान्तं निरवद्यं निरामयम्।
निष्प्रपञ्चं निराकारं निर्मलं निरुपाधिकम्॥ शिव ०स०८॥
निष्प्रपञ्चः निराकारो निरीहो निरुपद्रवः॥ ,, ३९॥

प्रश्न—प्रथम संस्करण में इस का निर्वचन " निर्गतः आकारो यस्मात् स निराकारः" यह था, यह शुद्ध था, परन्तु इस निर्वचन से ईश्वर में आकार का होना सिद्ध हो जाता है। उस के बाद आर्य समाजियों ने "निर्गतः आकारात्स निराकारः" ऐसा निर्वचन बना दिया है, जो कि व्याकरण की रीति से महा अशुद्ध है परन्तु इस से काम सिद्ध न हुआ क्योंकि ईश्वर का आकार से निकलना इस में सिद्ध है, जिस प्रकार निष्कौषाम्बि, निर्वाराणसिः इत्यादि में कौषाम्बि और वाराणसि का।

उत्तर—वादी ने इस बात के लिये कि 'निर्गत आकारात् स निराकारः' निर्वचन आर्य समाजियों ने किया है, कोई हेतु नहीं दिया। सत्यार्थप्रकाश के १८७५ वाले संस्करण के पश्चात् १८८३ में संशोधित संस्करण छपा। स्वामी जी के जीवन काल में ही उस के ११ समुल्लासों तक छपने और पूरी कापी प्रैस में पंहुचने के उन के अपने पत्र मिलते हैं, भूमिका उनकी अपनी लिखी हुई है। पूरी हस्त लिखित कापी अब भी अजमेर में सुरक्षित है, जिस पर स्वामी जी की लेखनी से संशोधन हुए २ हैं। इस अवस्था में यह कहना कि प्रथम समुल्लास में अमुक बात आर्य समाजियों ने लिख दी है, दुराग्रह मात्र है।

अब रहा यह प्रश्न कि यह निर्वचन व्याकरण की रीति से महा अशुद्ध है, इस के लिये भी वादी ने व्याकरण का कोई सूत्र नहीं दिया जिस से यह निर्वचन अशुद्ध सिद्ध हो। परन्तु हम समझते हैं कि ये दोनों ही निर्वचन व्याकरण की रीति से शुद्ध हैं।

निर्गतः आकारो यस्मात् स निराकारः" यह निर्वचन तो अष्टाध्यायी २।२।२४ सूत्र के वार्त्तिक—"प्रादिभ्यो धातुजस्योत्तरपदस्य लोपश्च वा बहुव्रीहिर्वक्तव्यः।" से ठीक है। आज कल के संस्करणों वाला निर्वचन-'निर्गत आकारात्सः निराकारः' अष्टाध्यायी के सूत्र २।२।१८ के वार्त्तिक "निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या" ॥ से शुद्ध है।

वादी यह कहता है कि इस निर्वचन से परमात्मा में आकार का होना सिद्ध होता है, यह बात भी ठीक नहीं है, क्योंकि 'निर्गतः' का अर्थ परमात्मा के विषय में एक देशी वस्तुओं की भान्ति निकलना नहीं होगा। यजुर्वेद के मन्त्र में "सपर्यगात्" ॥ ४०।८॥ का अर्थ यह कभी नहीं होता और न ही किसी भाष्यकार ने किया है कि वह सब स्थानों पर जाता है, और "सर्वगतः" आदि शब्दों का अर्थ भी यह नहीं होता कि वह सब स्थानों पर जाता है, बलिक यही किया जाता है कि सब स्थानों को सदा ही प्राप्त है, वह सर्वव्यापक है, इस में सब सनातन धर्मी भाष्यकार भी सहमत हैं। इसी प्रकार से 'निर्गतः आकारात्' का अर्थ भी यही होगा कि वह आकार को प्राप्त नहीं होता, वह सदा ही निराकार है। निर्वाराणसी और निष्कौषाम्बि शब्दों में वाराणसी और कौषाम्बि शब्द तो हैं परन्तु जिस व्यक्ति का सम्बन्ध अब वाराणसी और कौषाम्बि से नहीं है, वाराणसी और कौषाम्बि नगर उस में स्थित नहीं हैं। इसी प्रकार से निराकार शब्द में आकार शब्द की सत्ता है, परन्तु आकार की सत्ता तो परमात्मा में नहीं है, क्योंकि वह तो सदा ही आकार को अप्राप्त है।

जो 'निर्गतः आकारो यस्मात् स निराकारः' निर्वचन के विषय में वादी ने कहा है कि इस से परमात्मा में आकार का होना सिद्ध होता है इस लिये आर्य समाजियों ने इसे परिवर्तित कर दिया है, यह भी ठीक नहीं। ऋ० १।५९।१४ मंत्र में "निरेकः" शब्द आता है, उस पर निरुक्त ६।३१। है। उसका स्कन्द स्वामी ने भाष्य किया है (२-४९९)। उसने इस शब्द की निरुक्ति ठीक ऐसे ही की है—"निर्गत एकोऽप्यन्यः सहायो यस्मात् स निरेकः।" यह संग्राम का विशेषण है। भाव यह है कि इन्द्र ने ऐसे संग्राम में विजय प्राप्त की जिसमें उसका एक भी सहायक नहीं था। तो क्या वादी इस का यह अर्थ बतायेगा कि इन्द्र (परमात्मा) का पहले कोई सहायक था फिर वह भाग गया? सर्वथा नहीं। उसे स्वीकार करना पड़ेगा कि 'इन्द्र' सदा अकेला ही है, उसे किसी सहायक की आवश्यकता नहीं। ठीक ऐसे ही परमात्मा सदा ही आकार से रहित है। अतः वादी का आक्षेप सर्वथा निराधार है।

निरञ्जन—मूल—(अञ्जू व्यक्तिम्लक्षणकान्तिगतिषु) इस धातु से "अञ्जन" शब्द और निर् उपसर्ग के योग से "निरञ्जन" शब्द सिद्ध होता है "अञ्जनं व्यक्तिर्म्लेक्षणं कुकाम इन्द्रियैः प्रातिश्ले-

त्यस्माद्यो निर्गतः पृथग्भूतः स निरञ्जनः" जो व्यक्ति अर्थात् आकृति, म्लेच्छाचार, दुष्टकामना और चक्षुरादि इन्द्रियों के विषयों के पथ से पृथक् है इससे ईश्वर का नाम "**निरञ्जन**" है। (पृष्ठ १०)

भाष्य—श्वेताश्वतरोपनिषद् का वाक्य है—

निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् ॥ श्वेता० ६। १९ ॥

इस वाक्य में परमात्मा का नाम निरञ्जन बताया गया है।

गणपति—मूल—(गण संख्याने) इस धातु से "गण" शब्द सिद्ध होता और इस के आगे "ईश" वा "पति" शब्द रखने से "गणेश" और "गणपति" शब्द सिद्ध होते हैं। "ये प्रकृत्यादयो जड़ा जीवाश्च गण्यन्ते संख्यायन्ते तेषामीशः स्वामी पतिः पालको वा।" जो प्रकृत्यादि जड़ और सब जीव प्रख्यात पदार्थों का स्वामी वा पालन करने हारा है इस से उस ईश्वर का नाम "**गणेश**" वा "**गणपति**" है। (पृष्ठ १०)

भाष्य—प्रमाण—

गणानां त्वा गणपति ँ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपति ँ हवामहे।
निधीनां त्वा निधिपति ँ हवामहे वसो मम ॥ यजु २३। १९ ॥

इस मन्त्र में परमात्मा का नाम गणपति बताया गया है।

गणेशमहिम्नः स्तोत्र अष्टमावृत्ति निर्णयसागर प्रैस १९१६ में ये श्लोक हैं—

यतो जातं विश्वं स्थितमपि सदा यत्र विलयः
स कीदृग्गीर्वाणः सुनिगमनुतः श्री गणपतिः ॥ १ ॥
गणेशं गाणेशः शिवमिति शैवाश्च विबुधा।
रविं सौरा विष्णुं प्रथमपुरुषं विष्णुभजकाः ॥
वदन्त्येकं शाक्ता जगदुदयमूलां परशिवां,
न जाने किं तस्मै नम इति परं ब्रह्मसकलम् ॥ २ ॥

इन श्लोकों में बताया गया है कि उसी परब्रह्म का नाम गणपति और गणेश है। उसी को शैव शिव नाम से पुकारते हैं। वैष्णव विष्णु नाम से पुकारते हैं।

गोपालसहस्र नाम में—

गणानां त्राणकर्ता च गणेशो ग्रहिलो ग्रही ॥ ४४ ॥

सूर्य सहस्र नाम—

ओं प्रियाय नमः ॥ ३९ ॥ ओं विश्वेश्वराय नमः ॥ ४ ॥ ओं प्रभवे नमः ॥ १७ ॥ ओं विभवे नमः ॥ १८ ॥ ओं अजयाय नमः ॥ ८२ ॥ ओं

गणपतये नमः ॥ २७७ ॥ ओं गणेशाय नमः ॥ २७८ ॥ ओं परमेश्वराय नमः ॥ ९३० ॥

यहां परमात्मा के अनेक नामों में गणपति और गणेश नाम भी बताए गए हैं। यदि कोई कहे कि ये सब नाम इस भौतिक सूर्य के हैं, तो उस का कथन ठीक नहीं है, क्योंकि यहां उस को विभु कहा गया है, सूर्य विभु नहीं है, वह तो एक देशी है। यहां उस को स्पष्ट ही परमेश्वर कहा गया है। इस से सिद्ध है कि यहां सूर्य शब्द से तात्पर्य उसी पर ब्रह्म परमात्मा का है और गणपति और गणेश नाम भी उसी के हैं।

विश्वेश्वर—मूल—" यो विश्वमीष्टे स विश्वेश्वरः "। जो संसार का अधिष्ठाता है इस से उस परमेश्वर का नाम " विश्वेश्वर " है। (पृष्ठ १०)

भाष्य—मैत्र्युपनिषद् का प्रमाण है—

विश्वेश्वर नमस्तुभ्यं विश्वात्मा विश्वकर्मकृत्।
विश्वभुग्विश्वमायुस्त्वं विश्वक्रीड़ारतिप्रभुः ॥ मैत्र्यु० ॥ ५ । १ ॥

इस वाक्य में परमात्मा को विश्वेश्वर, विश्वात्मा आदि नामों से नमस्कार किया गया है।

कूटस्थ—मूल—" यः कूटेऽनेकविधव्यवहारे स्वस्वरूपेणैव तिष्ठति स कूटस्थः परमेश्वरः "। जो सब व्यवहारों में व्याप्त और सब व्यवहारों का आधार हो के भी किसी व्यवहार में अपने स्वरूप को नहीं बदलता इससे परमेश्वर का नाम " कूटस्थ " है। (पृष्ठ १०)

भाष्य—भगवद्गीता में श्लोक हैं—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ गी० १५ । ३ ॥
येत्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥ गी० १२ । ३ ॥

अर्थात्—ये दो पुरुष लोक में हैं, क्षर और अक्षर, क्षर तो सब भूत हैं, कूटस्थ परमात्मा अक्षर कहलाता है।

अगले श्लोक में उस अक्षर, अनिर्देश्य, अव्यक्त, सर्वव्यापक, अचिन्त्य, कूटस्थ अचल और ध्रुव परमात्मा की उपासना का विधान किया है।

देवी—मूल—जितने " देव शब्द के अर्थ लिखे हैं उतने ही "देवी" शब्द के भी हैं। परमेश्वर के तीनों लिङ्गों में नाम हैं, जैसे—ब्रह्म चितिरीश्वरश्चेति "। जब ईश्वर का विशेषण होगा तब " देव " जब चिति का होगा तब " देवी " इससे ईश्वर का नाम " देवी " है। (पृष्ठ ११)

भाष्य—प्रमाण—

शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥ यजु० ३६ । १२ ॥

इस मन्त्र में परमात्मा को देवी, और आपः नामों से स्मरण किया गया है और प्रार्थना की गई है कि वह हमारे चारों ओर सुख की वर्षा करे।

श्री–मूल–(श्रिञ् सेवायाम्) इस धातु से " श्री " शब्द सिद्ध होता है । " यः श्रीयते सेव्यते सर्वेण जगता विद्वद्भिर्योगिभिश्च स श्रीरीश्वरः "। जिस का सेवन सब जगत् विद्वान् और योगी जन करते हैं उस परमात्मा का नाम " श्री " है। (पृष्ठ ११)

भाष्य—कौषीतकि उपनिषद् का वाक्य है—

उक्थं ब्रह्मेति.........तच्छ्री त्युपासीत ॥ २ । ६ ॥

नृसिंह पूर्वतापिनी चतुर्थ्युपनिषद् में लिखा है—

या श्रीः ॥ ७ ॥ यश्चोंकारः ॥ ११ ॥ यश्च कालः ॥ २२ ॥ यश्च मनुः ॥ २३ ॥ यश्च यमः ॥ २५ ॥ यश्च प्राणः ॥२७॥ एतैर्मन्त्रैर्नित्यं देवं स्तुवध्वम् ॥

इन उपनिषदों में परमात्मा का नाम श्री बताया गया है।

लक्ष्मी–मूल–(लक्ष दर्शनाङ्कनयोः) इस धातु से " लक्ष्मी " शब्द सिद्ध होता है " यो लक्षयति पश्यत्यङ्कते चिह्नयति चराचरं जगदथवा वेदैराप्तैर्योगिभिश्च यो लक्ष्यते स लक्ष्मीः सर्वप्रियेश्वरः "। जो सब चराचर जगत् को देखता चिह्नित अर्थात् दृश्य बनाता, जैसे शरीर के नेत्र, नासिका और वृक्ष के पत्र, पुष्प, फल, मूल, पृथिवी, जल के कृष्ण, रक्त, श्वेत, मृत्तिका, पाषाण, चन्द्र, सूर्यादि चिह्न बनाता, तथा सब को देखता, सब शोभाओं की शोभा और जो वेदादि शास्त्र वा धार्मिक विद्वान् योगियों का लक्ष्य अर्थात् देखने योग्य है इस से उस परमेश्वर का नाम " लक्ष्मी " है। (पृष्ठ ११)

भाष्य—हमारे सनातनधर्मी भाईयों के परम प्रामाणिक ग्रन्थ विष्णु सहस्रनाम में परमात्मा का नाम लक्ष्मी आता है—

अनादिर्भूर्भुवो लक्ष्मीः सुवीरो रुचिराङ्गदः ॥ १०१ ॥

सरस्वती–मूल–(सृ गतौ) इस धातु से " सरस् " उस से मतुप् और ङीप् प्रत्यय होने से " सरस्वती " शब्द सिद्ध होता है। " सरो विविधं ज्ञानं विद्यते यस्यां चितौ सा सरस्वती "। जिसको विविध विज्ञान अर्थात् शब्द अर्थ सम्बन्ध प्रयोग का ज्ञान यथावत् होवे इससे उस परमेश्वर का नाम " सरस्वती " है। (पृष्ठ ११)

भाष्य—प्रमाण—

यश्च विष्णु ॥ यश्च महेश्वरः ॥ यश्च पुरुषः ॥ यश्चेश्वरः ॥ या सरस्वती …………यश्चोंकारः ॥ एतैमन्त्रैर्नित्यं देवं स्तुवध्वम् ॥ नृसिंह पूर्व० ४ । ४ ॥

यहां परमात्मा के अनेक नामों में **सरस्वती** नाम भी बताया गया है। यदि कोई कहे कि यह परमात्मा का वाचक नहीं है, तो उस का यह कथन ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि उस के साथ उस के पर्याय ईश्वर, परमेश्वर और ओंकार आदि नाम पढ़े गए हैं। अतः यह निश्चित है कि **सरस्वती** नाम उसी ब्रह्म का है।

सर्वशक्तिमान्—मूल—"सर्वाः शक्तयो विद्यन्ते यस्मिन् स सर्वशक्तिमानीश्वरः"। जो अपने कार्य करने में किसी अन्य की सहायता की इच्छा नहीं करता, अपने ही सामर्थ्य से अपने सब काम पूरा करता है इसलिये उस परमात्मा का नाम "**सर्वशक्तिमान्**" है। (पृष्ठ ११)

भाष्य—सब आस्तिक लोग परमात्मा को सर्वशक्तिमान् मानते हैं, इस लिये इस सर्वसम्मत विषय पर किसी प्रमाण की तो आवश्यकता नहीं है, परन्तु सर्वशक्तिमान् शब्द के अर्थों पर कुछ मतभेद है। कई लोग कहते हैं—

प्रश्न—सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ यही है कि परमात्मा सब कुछ कर सकता है। यह अर्थ जो स्वामी जी ने किया है, यह किसी भी प्रकार से ठीक नहीं है।

उत्तर—सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ हो ही यही सकता है, जो श्री स्वामी जी महाराज ने किया है, क्योंकि यदि यह अर्थ ठीक माना जाए कि परमात्मा सब कुछ कर सकता है तो प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या परमात्मा सर्वथा अपने जैसा एक और परमात्मा बना सकता है? क्या वह कोई ऐसी वस्तु बना सकता है जिसे वह स्वयं न उठा सके? यदि कहो कि वह चाहे तो अपने जैसा एक और परमात्मा भी बना सकता है और ऐसी वस्तु भी बना सकता है जिसे वह स्वयं न उठा सके। तो हम यह कहेंगे, बहुत अच्छा। कल्पना करो कि उस ने यह दोनों काम कर लिए, उस ने एक अपने जैसा परमात्मा बना लिया, परन्तु यह नया बना परमात्मा सर्वथा वैसा नहीं बना, क्योंकि यह परमात्मा बना हुआ है और इस के बनाने वाला परमात्मा अनादि है, इस नये बने परमात्मा में एक गुण की कमी रह गई। इस लिए वह अपने जैसा परमात्मा नहीं बना सकता।

अब दूसरी कल्पना को लेते हैं कि उस ने एक ऐसी वस्तु बना ली, जिसे वह स्वयं नहीं उठा सकता, तब उस में यह शक्ति न हुई कि वह उस वस्तु को उठा सके, और यदि वह ऐसी वस्तु नहीं बना सकता तो उस में ऐसी वस्तु बनाने की शक्ति की कमी सिद्ध है।

अतः यह मानना कि सर्वशक्तिमान् शब्द का यह अर्थ है कि परमात्मा सब कुछ कर सकता है, ठीक नहीं। वही स्वामी जी वाला अर्थ ही ठीक मानना पड़ेगा।

न्यायकारी–मूल–(णीञ् प्रापणे) इस धातु से " न्याय " शब्द सिद्ध होता है। " प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः " यह वचन न्यायसूत्रों पर वात्स्यायनमुनिकृत भाष्य का हैं। " पक्षपातराहित्याचरणं न्यायः "। जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों की परीक्षा से सत्य २ सिद्ध हो तथा पक्षपात रहित धर्मरूप आचरण है वह न्याय कहाता है। " न्यायं कर्तुं शीलमस्य स न्यायकारीश्वरः "। जिस का न्याय अर्थात् पक्षपातरहित धर्म करने ही का स्वभाव है इस से उस ईश्वर का नाम " **न्यायकारी** " है। (पृष्ठ ११)

भाष्य—प्रश्न—न्याय शब्द 'नी' उपसर्ग पूर्वक 'इण् गतौ' धातु से बनता है, परन्तु स्वामी जी ने 'णीञ् प्रापणे' धातु से बनाया है, इसलिये यह निर्वचन सर्वथा व्याकरणविरुद्ध है।

उत्तर—न्याय शब्द दोनों प्रकार से बनता है। अष्टाध्यायी के तीसरे अध्याय में एक सूत्र है—

परिन्योर्नीणोर्द्यूताभ्रेषयोः ॥ अष्टा० ३।३।३७॥

इस सूत्र से 'नी' शब्द उपपद होने पर 'घञ्' प्रत्यय हो कर 'इण गतौ' धातु से न्याय शब्द सिद्ध होता है। इस से आगे इसी अध्याय और इसी पाद में निम्न लिखित सूत्र है—

अध्यायन्यायोद्यावसंहाराश्च ॥ अष्टा० ३।३।१२२॥

यहां न्याय शब्द निपातन से बनाया गया है। इस का स्पष्ट तात्पर्य यह है कि जो नियम पहले सूत्र में दिया गया है, वह यहां लागू नहीं है। पहले सूत्र में 'इण् गतौ' धातु से न्याय शब्द बनाया गया है, सूत्रकार का निपातन से बनाने का तात्पर्य ही यही है कि यहां 'इण् गतौ' धातु से यह शब्द नहीं बनता किन्तु 'णीञ् प्रापणे' से बनेगा।

अद्वैत–मूल–" द्वयोर्भावो द्वाभ्यामितं सा द्विता द्वीतं वा सैव तदेव वा द्वैतम्, न विद्यते द्वैतं द्वितीयेश्वरभावो यस्मिंस्तद् द्वैतम् " अर्थात् " सजातीयविजातीयस्वगतभेदशून्यं ब्रह्म "। दो का होना वा दोनों से युक्त होना वह द्विता वा द्वीत अथवा द्वैत इससे जो रहित है, सजातीय–जैसे मनुष्य का सजातीय दूसरा मनुष्य होता है, विजातीय–जैसे मनुष्य से भिन्न जाति वाला वृक्ष, पाषाणादि। स्वगत–अर्थात् शरीर में जैसे आंख,नाक,कान आदि अवयवों का भेद है वैसे दूसरे स्वजातीय ईश्वर,विजातीय ईश्वर वा अपने आत्मा में तत्वान्तर वस्तुओं से रहित एक परमेश्वर है इससे परमात्मा का नाम " **अद्वैत** " है। (पृष्ठ ११)

भाष्य—इस विषय में नीचे प्रमाण दिये जाते हैं—

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधा एक एव त ँ सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥

यजु० १७।२७ ॥

अर्थ—(यः) जो परमेश्वर (नः पिता) हम सब का पालन करने वाला (जनिता) जनक (यः विधाता) जो विधाता है (विश्वा भुवनानि धामानि वेद) सब लोक लोकान्तर और स्थिति के स्थानों को जानता है (यः देवानां नामधा) जो सूर्यादि देवों के नामों को धारण करता हुआ (एक एव) एक ही अद्वितीय परमात्मा है (तं सम्प्रश्नम्) उसी जानने योग्य परमेश्वर को आश्रय कर के (अन्या भुवना यन्ति) अन्य सब लोक लोकान्तर गति कर रहे हैं।

सलिल एको द्रष्टाद्वैतो भवति ॥ बृह० उ ०९२ । ९३ ॥

अर्थात्—वह द्रष्टा एक अद्वैत है।

शान्तं शिवमद्वैतम् ॥ माण्डू ०७ ॥

इस मन्त्र में शान्त, शिव और अद्वैत उस के नाम बताए हैं।

अद्वैतः सर्वभावानाम् ॥ गौड़० ॥

अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतम् ॥ गौड़० १६ ॥

प्रश्न—'सजातीय, विजातीय, स्वगतभेतशून्यं ब्रह्म' परमात्मा का यह लक्षण किया है। स्वामी जी अद्वैत का खण्डन करते थे और द्वैत वादी थे, इस लिए परमात्मा को विजातीय भेदशून्य कहना सर्वथा अशुद्ध है।

उत्तर—श्री स्वामी जी महाराज ने अपनी व्याख्या में स्पष्ट कर दिया है कि 'सजातीयविजातीयस्वगतभेदशून्यं ब्रह्म' से उन का क्या तात्पर्य है। अपनी उस व्याख्या में वे बताते हैं कि 'जैसे मनुष्य का सजातीय दूसरा मनुष्य होता है, इस प्रकार से परमात्मा के गुणों वाला दूसरा कोई ईश्वर नहीं है, इस से सजातीय भेदशून्य ब्रह्म को कहा गया है। विजातीय के विषय में श्री स्वामी जी लिखते हैं कि 'विजातीय जैसे मनुष्य से भिन्न जाति वाला वृक्ष, पाषाण आदि,' अर्थात् परमात्मा से भिन्न गुणों वाला भी कोई ईश्वर संसार में नहीं है। अन्त में और स्पष्ट करते हैं कि वह परमात्मा 'दूसरे सजातीय ईश्वर और विजातीय ईश्वर' के भेद से रहित है। जैसे एक देश में एक राजा है, तो कहा जाय कि इस देश में न कोई इस राजा की जाति का दूसरा राजा है और न कोई इस राजा से भिन्न जाति का दूसरा राजा है, इस का यह तात्पर्य नहीं कि उस देश में और भी कोई नहीं रहता।

यही आशय सत्यार्थ प्रकाश १८७५ के संस्करण में भी स्पष्ट किया गया है। वहां लिखा है कि—

"विजातीय—न्यायकारित्वादि गुण परमात्मा के स्वाभाविक हैं, परमेश्वर से भिन्न अन्यायकरित्वादि विशिष्ट गुणवान् दूसरा विरुद्धस्वभाव परमेश्वर जैसे खुदा के विरुद्ध शैतान"।

अर्थात् परमात्मा से विरुद्ध गुण कर्म स्वभावों वाला दूसरा परमेश्वर नहीं है, हां जीवादि हैं। इस का निषेध श्री स्वामी जी महाराज ने नहीं किया।

निर्गुण—मूल—" गण्यन्ते ये ते गुणा वा यैर्गणयन्ति ते गुणाः, यो गुणेभ्यो निर्गतः स निर्गुण ईश्वरः"। जितने सत्व,रज,तम,रूप,रस,स्पर्श,गन्धादि जड़ के गुण,अविद्या,अल्पज्ञता,राग,द्वेष और अविद्यादि क्लेश जीव के गुण हैं उन से जो पृथक् है। इस में " **अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्** " इत्यादि उपनिषदों का प्रमाण है। जो शब्द, स्पर्श, रूपादि गुण रहित है इस से परमात्मा का नाम "**निर्गुण**" है। (पृष्ठ ११)

भाष्य—प्रमाण—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥

श्वेता० ६। ११॥

अर्थ—एक देव सर्वभूत प्राणियों के अन्दर छिपा हुआ, सर्वव्यापक सब भूतों का आत्मा, सब कर्मों का अध्यक्ष, सब भूतों का निवास, साक्षी, चेतन और **निर्गुण** है।

सगुण—मूल—" यो गुणैः सह वर्त्तते स सगुणः" जो सब का ज्ञान सर्व सुख पवित्रता अनन्त बलादि गुणों से युक्त है इस लिये परमेश्वर का नाम " **सगुण** " है। (पृष्ठ ११)

भाष्य—सगुण नाम पर कोई विवाद नहीं है, सनातनधर्मी भाई भी इस नाम को स्वीकार करते हैं, और उन के ग्रन्थों में भी प्रायः देखा जाता है, जैसे—

सगुणं ब्रह्म चिद्घनानन्दैकरूपम्॥ गोपीचन्दनोपनिषद्॥ ५॥
गुणवान् गुणविच्छ्रेष्ठो निर्गुणो गुणवत्प्रियः॥ शिव० स० ६५॥

प्रश्न—सगुण शब्द का अर्थ साकार है, यह जो अर्थ स्वामी जी ने किया है यह ठीक नहीं।

उत्तर—सगुण का अर्थ जो स्वामी जी महाराज ने किया है वह तो सीधा ही शब्द से निकल रहा है, जो गुणों सहित हो वह सगुण, परन्तु सगुण शब्द का अर्थ साकार किसी भी प्रकार से नहीं निकल सकता और न ही यह अर्थ मानने के लिए कोई विशेष हेतु है। सगुण और निर्गुण शब्द के अर्थों के विषय में श्री स्वामी जी महाराज लिखते हैं—

"जैसे पृथिवी गन्धादि गुणों से "सगुण" और इच्छादि गुणों से रहित होने से "निर्गुण" है, वैसे जगत् और जीव के गुणों से पृथक् होने से परमेश्वर "निर्गुण" और सर्वज्ञादि गुणों से सहित होने से "सगुण" है। अर्थात् ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है जो सगुणता और निर्गुणता से पृथक् हो। जैसे चेतन के गुणों से पृथक् होने से जड़ पदार्थ निर्गुण और अपने गुणों से सहित होने से सगुण, वैसे ही जड़ के गुणों से पृथक् होने से जीव निर्गुण और इच्छादि अपने गुणों से सहित होने से सगुण। ऐसे ही परमेश्वर में भी समझना चाहिये"।

अन्तर्यामी—मूल—"अन्तर्यन्तुं नियन्तुं शीलं यस्य सोऽयमन्तर्यामी" जो सब प्राणि और अप्राणिरूप जगत् के भीतर व्यापक हो के सब का नियम करता है इस लिये उस परमेश्वर का नाम "अन्तर्यामी" है। (पृष्ठ १२)

भाष्य—शतपथ ब्राह्मण में आता है—

वेत्थ नु त्वं काप्य तमन्तर्यामिणं य इमं च लोकं परं च लोकं सर्वाणि च भूतान्यन्तरो यमयतीति ॥ शत० १४।६।७।३ ॥ बृहदा० ३।७।१ ॥

बृहदारण्यकोपनिषद् में बड़ा लम्बा चौड़ा अन्तर्यामी प्रकरण आता है, उस में आता है—

यः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्सर्वेभ्यो भूतेभ्योऽन्तरो यं सर्वाणि भूतानि न विदुर्यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरं यः सर्वाणि भूतान्यन्तरो यमयत्येष त आत्मा-ऽन्तर्याम्यमृतः ॥

अर्थ—जो सब भूतों में स्थित होता हुआ सब भूतों के अन्दर है, जिस को सब भूत नहीं जानते, सब भूत जिस का शरीर हैं, जो सब भूतों के अन्दर सब पर शासन कर रहा है, वही मरण रहित सब का अन्तर्यामी आत्मा है।

धर्मराज—यम—मूल—"यो धर्मे राजते स धर्मराजः"। जो धर्म ही में प्रकाशमान और अधर्म से रहित धर्म ही का प्रकाश करता है इस लिए उस परमेश्वर का नाम **"धर्मराज"** है।

(यमु उपरमे) इस धातु से "यम" शब्द सिद्ध होता है। "यः सर्वान् प्राणिनो नियच्छति स यमः"। जो सब प्राणियों के कर्मफल देने की व्यवस्था करता और अन्यायों से पृथक् रहता है इस लिए परमात्मा का नाम "**यम**" है। (पृष्ठ १२)

भाष्य—निम्न लिखित वेद मन्त्र में परमात्मा को **महायम** कहा गया है—

सो ऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः ।
सो अग्नि स सूर्यः स एव महायमः ॥ अथर्व० १३ । ३।४,५ ॥

भगवद्गीता में आता है—

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणो शशाङ्कः ।
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ॥ भ० गी० ११ । ३९ ॥

इस श्लोक में परमात्मा को वायु, **यम**, अग्नि, वरुण, शशाङ्क, प्रजापति और प्रपितामह कहा गया है।

मैत्र्युपनिषद् में श्लोक है—

त्वमग्निस्त्वं यमस्त्वं पृथिवी त्वं विश्वं त्वमथाच्युतः ॥ ५ । १ ॥

हमारे सनातन धर्मी भाई यमराज किसी एक विशेष व्यक्ति को मानते हैं, उसी को कर्मों के फलों का निश्चय करने वाला और धर्मराज मानते हैं, परन्तु उन्हीं के एक ग्रन्थ में यम परमात्मा के नामों में गिनाया गया है—

या श्रीः ॥७॥ यश्चोंकारः ॥११॥ यश्च कालः ॥२२॥ यश्च मनुः ॥२३॥ यश्च यमः ॥ २५ ॥ यश्च प्राणः ॥ २७ ॥ एतैर्मन्त्रैर्नित्यं देवं स्तुतध्वम् ॥
नृसिंह पूर्व० चतुर्थ्युपनिषद् ॥

भगवान्—मूल—(भज सेवायाम्) इस धातु स " भग " इससे मतुप् होने से " भगवान् " शब्द सिद्ध होता है। " भगः सकलैश्वर्य्यं सेवनं वा विद्यते यस्य स भगवान् "। जो समग्र ऐश्वर्य से युक्त वा भजने के योग्य है इसी लिए उस ईश्वर का नाम " भगवान् " है। (पृष्ठ १२)

भाष्य—

भग एव भगवाँ २ ऽ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह॥ यजु० ३४।३८॥

अर्थ—हे विद्वान् लोगो ! जो (भगः एव) सेवनीय ही (भगवान्) प्रशस्त ऐश्वर्य युक्त (अस्तु) हो (तेन) उस ऐश्वर्यरूप ऐश्वर्य वाले परमेश्वर के साथ (वयम्) हम लोग (भगवन्तः) समग्र शोभायुक्त (स्याम) होवें। हे (भग) सम्पूर्ण शोभायुक्त ईश्वर ! (तम् त्वा) उन आप को (सर्व, इत्) समस्त ही जन (जोहवीति) शीघ्र पुकारता है। हे (भग) सकल ऐश्वर्य के दाता (सः) सो आप (इह) इस जगत् में (नः) हमारे (पुर एता) अग्रगामी (भव) हूजिये ।

उपनिषद् में भी आता है—

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवान् तस्मात् सर्वगतः शिवः ॥ श्वेता० ३।११ ॥

इस मन्त्र में परमात्मा के अनेक नामों में भगवान् नाम भी गिनाया है।

मनु–मूल–(मन ज्ञाने) धातु से " मनु " शब्द बनता है। " यो मन्यते स मनुः "। जो मनु अर्थात् विज्ञानशील और मानने योग्य है इसलिए उस ईश्वर का नाम " मनु " है। (पृष्ठ १२)

भाष्य—

प्रजापतिर्वै मनुः सहीद ँ सर्वममनुत ॥ शत० ६।६।१।१९ ॥

यहां प्रजापति परमात्मा को मनु नाम से स्मरण किया गया है।

इस समुल्लास के आरम्भ में श्री स्वामी जी महाराज ने इस विषय में मनुस्मृति का प्रमाण दिया है—

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥ मनु० १२।१२३ ॥

श्लोक का अर्थ ऋषि ने वहां कर दिया है।

नृसिंह पूर्वतापिन्युपनिषद् का प्रमाण जो ' यम ' नाम के सम्बन्ध में दिया है, उस में परमात्मा का नाम मनु भी बताया गया है।

पुरुष–मूल–(पॄ पालनपूरणयोः) इस धातु से "पुरुष" शब्द सिद्ध हुआ है। "य स्वव्याप्त्या चराऽचरं जगत् पृणाति पूरयति वा स पुरुषः।" जो सब जगत् में पूर्ण हो रहा है इस लिए उस परमेश्वर का नाम " पुरुष " है। (पृष्ठ १२)

भाष्य—

अथ यः पुरुषस्स प्राणस्तत्साम तद्ब्रह्म तदमृतम् ॥ जै० उ० १।२५।१०॥

जो पुरुष है, वह प्राण है, वह साम है, वह ब्रह्म है, वह अमृत है।

पुरुषो हि प्रजापतिः ॥ शत० ७।४।१।१५ ॥

पुरुषः प्रजापतिः ॥ शत० ६।२।१।२३ ॥ ७।१।१।३७॥

वेद में मन्त्र है—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ यजु० ३१।१ ॥

हज़ारों सिर, हज़ारों आंखें, और हज़ारों पाओं वाला पुरुष है।

इसी प्रकार से और देखें—

पुरुष एवेद ँ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ॥ यजु० ३१ । २ ॥

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः ॥ ३१ । ३ ॥

काल—मूल—(कल संख्याने) इस धातु से " काल " शब्द बना है । " कलयति संख्याति सर्वान् पदार्थान् स कालः ।" जो जगत् के सब पदार्थ और जीवों की संख्या करता है इस लिए उस परमेश्वर का नाम " **काल** " है । (**पृष्ठ १२**)

भाष्य—

या श्रीः ॥ ७ ॥ यश्चोंकारः ॥ ११ ॥ यश्च कालः ॥ २२ ॥........ एतैर्मन्त्रैर्नित्यं देवं स्तुवध्वम ॥ नृसिंह० पू० चतुर्थ्यु०

यहा काल नाम परमात्मा का बताया है ।

प्रश्न—यहा लिखा है कि " जो जगत् के सब पदार्थ और जीवों की संख्या करता है, इस लिये परमेश्वर का नाम काल है " । जीव वास्तव में अनन्त हैं, उन की संख्या का कहना सर्वथा अशुद्ध है ।

उत्तर—हम लोगों के लिए तो जीव अनन्त हैं, परन्तु परमात्मा के लिए अनन्त नहीं हैं, कोई संख्या परमात्मा के लिये अनन्त नहीं हो सकती । वह उन की गणना जानता है, क्योंकि वह सर्वज्ञ है । उन की गणना जानने के कारण ही उसे काल कहा गया है ।

आप्त—मूल—(आप्लृ व्याप्तौ) इस धातु से आप्त शब्द सिद्ध होता है । "यः सर्वान् धर्मात्मन आप्नोति वा सर्वैर्धर्मात्मभिराप्यते छलादिरहितः स आप्तः ।" जो सत्योपदेशक सकलविद्यायुक्त सब धर्मात्माओं को प्राप्त होता और धर्मात्माओं को प्राप्त होने योग्य छल कपट आदि से रहित है इस लिये उस परमत्मा का नाम आप्त है । (**पृष्ठ १२**)

भाष्य—प्रमाण—

स्तुष्व वर्ष्मन् पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतममाप्तमाप्त्यानाम् ।
आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः ॥

अथर्व० ५ । २ । ७ ॥

अर्थ—(वर्ष्मन्) हे ऐश्वर्यवान् पुरुष ! (पुरुवर्त्मानम्) बहुत मार्ग वाले (ऋभ्वाणम्) दूर दूर तक चमकने वाले (इनतमम्) महाप्रभु और (आप्त्यानाम्) आप्त यथार्थ वक्ता पुरुषों में रहने वाले गुणों के(आप्तम्) यथार्थ वक्ता परमेश्वर की (स्तुष्व) स्तुति कर । (भूर्योजाः) वह महाबली (शवसा) अपने बल से (आ) सब ओर (दर्शति) देखता है और वह (पृथिव्याः) पृथिवी का (प्रतिमानम्) प्रतिमान हो कर (प्र) भली भान्ति (सक्षति) व्यापता है ।

शंकर–मूल–(डुकृञ् करणे) " शम् " पूर्वक इस धातु से " शङ्कर " शब्द सिद्ध हुआ है। " यः शङ्कल्याणं सुखं करोति स शङ्करः।" जो कल्याण अर्थात् सुख का करने हारा है इस से उस ईश्वर का नाम " शङ्कर " है। (पृष्ठ १२)

भाष्य–प्रमाण–

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च। नमः शङ्कराय च मयस्कराय च। नमः शिवाय च शिवतराय च॥ यजु० १६।४१॥

अर्थ—जो सुखस्वरूप, संसार के उत्तम सुखों का देने वाला, शंकर अर्थात् कल्याण का कर्ता, मोक्षस्वरूप, धर्मयुक्त कामों को ही करने वाला, अपने भक्तों को सुख का देने वाला और धर्म के कामों में युक्त करने वाला, अत्यन्त मङ्गल स्वरूप और धार्मिक मनुष्यों को मोक्ष सुख देने हारा है, उस को हमारा बारम्बार नमस्कार हो।

स्कन्द उपनिषद् में भी परमात्मा का नाम शङ्कर बताया है—

विरिञ्चिनारायणशङ्करात्मकं नृसिंह देवेश तवप्रसादतः।
अचिन्त्यमव्यक्तमव्ययं वेदात्मकं ब्रह्म निजं विजानते॥ स्कन्द० उ० ४॥

महादेव–मूल–" महत् " शब्द पूर्वक " देव " शब्द से " महादेव " शब्द सिद्ध होता है। " यो महतां देवः स महादेवः।" जो महान् देवों का देव अर्थात् विद्वानों का भी विद्वान्, सूर्यादि पदार्थों का प्रकाशक है इस लिये उस परमात्मा का नाम " महादेव " है। (पृष्ठ १२)

भाष्य–प्रमाण–

चिज्जडानां तु यो द्रष्टा सोऽच्युतो ज्ञानविग्रहः।
स एव हि महादेवः स एव हि महाहरिः॥ ४॥
स एव ज्योतिषां ज्योतिः स एव परमेश्वरः।
स एव हि परं ब्रह्म॥ ५॥ नृसिं० उप०

इस पौराणिक उपनिषद् में भी महादेव कोई पौराणिक देवता नहीं माना गया, बल्कि परब्रह्म को ही महादेव कहा गया है।

प्रश्न—" महतां देवः महादेवः " यह निर्वचन अशुद्ध है। " महांश्चासौ देवः " इस शुद्ध निर्वचन की स्वामी दयानन्द को खबर ही नहीं।

उत्तर—' महतां देवः महादेवः ' में व्याकरण कौन सी बाधा डालता है? या आप के विचार में वह ' महतां देवः ' बड़ों का देव नहीं है? बिना हेतु के आप के कथन का कोई मूल्य नहीं है।

प्रिय–मूल–(प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च) इस धातु से " प्रिय " शब्द सिद्ध होता है। " यः

पृणाति प्रीयते वा स प्रियः।" जो सब धर्मात्माओं, मुमुक्षुओं और शिष्टों को प्रसन्न करता और सब को कामना के योग्य है इस लिये उस ईश्वर का नाम "प्रिय" है। (पृष्ठ १२)

भाष्य—प्रमाण—

त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः।

सखा सखिभ्य ईड्यः॥ ऋ० १।७५।४॥

अर्थ—आप मनुष्यों के बन्धु हैं, हे प्रकाशस्वरूप अग्ने! आप प्रिय मित्र हैं, आप अपने मित्र जीवों से स्तुति के योग्य हैं।

इस मन्त्र में परमात्मा को प्रिय कहा गया है।

ओं प्रियाय नमः॥ ३९॥ ओं विश्वेश्वराय नमः॥ ४०॥ ओं प्रभवे नमः॥ १७॥ ओं विभवे नमः॥ १८॥ ओं अजयाय नमः॥८२॥ ओं गणपतये गमः॥ २७७॥ ओं गणेशाय नमः॥ २७८॥ ओं परमेश्वराय नमः॥ ९३०॥ सूर्य सहस्रनाम॥

यहां परमात्मा के विश्वेश्वर, परमेश्वर, विभु, प्रभु आदि नामों के साथ प्रिय नाम भी गिनाया गया है।

स्वयम्भू—मूल—(भू सत्तायाम्) "स्वयं" पूर्वक इस धातु से "स्वयम्भू" शब्द सिद्ध होता है। "य स्वयं भवति स स्वयम्भूरीश्वरः।" जो आप से आप ही है किसी से कभी उत्पन्न नहीं हुआ है इस से उस परमात्मा का नाम "स्वयम्भू" है। (पृष्ठ १२)

भाष्य—प्रमाण—

स्वयम्भूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदा असि वर्चो मे देहि।

सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते॥ यजु० २।२६॥

अर्थ—हे जगदीश्वर! (स्वयंभूः असि) आप स्वयंभू अजन्मा, अनादि हैं (श्रेष्ठः) अत्यन्त प्रशंसनीय (रश्मिः) प्रकाशमान (वर्चोदाः) विद्या वा प्रकाश देने वाले (असि) हैं (वर्चो मे देहि) मुझे विद्या वा प्रकाश दो (सूर्यस्य) चराचर जगत् के आत्मा आप वा भौतिक सूर्य के (आवृतम्) आचरण को (अनु आवर्ते) मैं स्वीकार करता हूं।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धं कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्योऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ यजु० ४०।८॥

अर्थ—वह परमात्मा सब ओर से व्याप्त, शीघ्रकारी, सर्वशक्तिमान्, शरीर रहित, फोड़ा फुनसी और घाव से रहित, नाड़ी नस के बन्धन से रहित, सदा पवित्र,

पापों से सदा मुक्त, सर्वज्ञ, सब के मनों का प्रेरक, दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला, (स्वयम्भूः) माता पिता से जन्म न लेने वाला अपनी सत्ता में सदा विद्यमान, अनादि स्वरूप है, वह यथार्थरूप से ठीक २ सनातन से चली आई प्रजाओं के लिये समस्त पदार्थों को विशेष कर रचता है और उन का ज्ञान प्रदान करता है।

इस मन्त्र में परमात्मा को **स्वयम्भू** कहा गया है।

प्रश्न—स्वयम्भू शब्द का निर्वचन 'स्वयं भवतीति स्वयंभूः' यह कर के भाषा लिखते समय कुछ का कुछ लिख दिया।

उत्तर—पूर्वपक्षी ने बिना ही कोई हेतु दिये कह दिया है कि संस्कृत और भाषा में विरोध है, पक्षपात को छोड़ कर यदि संस्कृत और भाषा के वाक्यों को पढ़ा जाए तो सर्वथा कोई भी विरोध प्रतीत नहीं होगा—

संस्कृत का श्री स्वामी जी महाराज का वाक्य है-–

'यः स्वयं भवति स स्वयंभूरीश्वरः'। और भाषा का वाक्य है—"**जो आप से आप ही है किसी से कभी उत्पन्न नहीं हुआ, इस से उस परमात्मा का नाम स्वयंभू**" है।

भाषा के वाक्य का पहला भाग तो संस्कृत वाक्य का अनुवाद मात्र है, और दूसरा भाग संक्षिप्त व्याख्या है। संस्कृत वाक्य का शब्दार्थ यह होगा—

यः=जो। स्वयं=आप (आप से आप)। भवति=है (भू सत्तायां धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन—अर्थात् भू धातु सत्ता या होने अर्थ में है) तो स्वामीजी ने यही अर्थ किया कि "जो अपने आप है"। इस वाक्य का स्पष्ट तात्पर्य यही होगा कि उस का कर्त्ता, उत्पादक, वा माता पिता कोई नहीं, अर्थात् वह किसी से कभी उत्पन्न नहीं हुआ।

इस से स्पष्ट है कि संस्कृत और भाषा में परस्पर कोई विरोध नहीं।

कवि—मूल—(कु शब्दे) इस धातु से "कवि" शब्द सिद्ध होता है। "यः कौति शब्दयति सर्वा विद्या स कविरीश्वरः।" जो वेद द्वारा सब विद्याओं का उपदेष्टा और वेत्ता है इस लिए उस परमेश्वर का नाम "**कवि**" है। (पृष्ठ १२)

भाष्य—ऊपर यजुर्वेद ॥ ४० । ८ ॥ का प्रमाण दिया जा चुका है, उस में परमात्मा का नाम 'कवि' आया है—'कविर्मनीषी परिभूः' इत्यादि।

शिव—मूल—(शिवु कल्याणे) इस धातु से "शिव" शब्द सिद्ध होता है। "बहुलमेतन्निदर्शनम्" इस से शिवु धातु माना जाता है, जो कल्याणस्वरूप और कल्याण का करने हारा है इस लिए उस परमेश्वर का नाम "**शिव**" है। (पृष्ठ १२)

भाष्य—

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ यजु० १६ । ४१ ॥

इस मन्त्र में परमात्मा को 'शिव' नाम से स्मरण किया है।

अदृश्यमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतम् ॥ माण्डू० ७ ॥

अदृश्य आदि परमात्मा के गुणों के साथ उस का नाम शिव बताया गया है।

मूल—ये सौ नाम परमेश्वर के लिखे हैं। परन्तु इन से भिन्न परमात्मा के असंख्य नाम हैं। क्योंकि जैसे परमेश्वर के अनन्त गुण कर्म स्वभाव हैं वैसे उस के अनन्त नाम भी हैं। उन में से प्रत्येक गुण कर्म और स्वभाव का एक २ नाम है। इस से ये मेरे लिखे नाम समुद्र के सामने बिन्दुवत् हैं, क्योंकि वेदादि शास्त्रों में परमात्मा के असंख्य गुण कर्म स्वभाव व्याख्यात किये हैं। उन के पढ़ने पढ़ाने से बोध हो सकता है। और अन्य पदार्थों का ज्ञान भी उन्हीं को पूरा २ हो सकता है जो वेदादि शास्त्रों को पढ़ते हैं। (पृष्ठ १३)

भाष्य—

प्रश्न—चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु, केतु, सूर्य ये नाम संसार में नवग्रहों के प्रसिद्ध हैं। इन नामों से यदि ईश्वर का ग्रहण किया जाए तो ज्योतिष् नामक एक वेदाङ्ग ही व्यर्थ हो जाए।

उत्तर—यह आक्षेप श्री स्वामी जी महाराज के पक्ष को बिना समझे कर दिया गया है। स्वामी जी का यह पक्ष नहीं है कि चन्द्र, मङ्गल आदि शब्दों का परमात्मा के सिवाय और कुछ अर्थ हो ही नहीं सकता। उन का पक्ष तो उन के अपने शब्दों से ही स्पष्ट है—

'ओ३म' यह तो केवल परमात्मा ही का नाम है और अग्नि आदि नामों में परमेश्वर के ग्रहण में प्रकरण और विशेषण नियमकारक हैं, इस से क्या सिद्ध हुआ कि जहां २ स्तुति, प्रार्थना, उपासना, सर्वज्ञ, व्यापक, शुद्ध, सनातन और सृष्टिकर्त्ता आदि विशेषण लिखे हैं, वहीं २ इन नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता है और जहां २ ऐसे प्रकरण हैं कि—

ततो विराडजायत विराजो अधिपूरुषः ॥..................

ऐसे प्रमाणों में विराट् पुरुष, देव, आकाश, वायु, अग्नि, जल, भूमि आदि नाम लौकिक पदार्थों के हैं। क्योंकि जहां २ उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, अल्पज्ञ, जड़, दृश्य आदि विशेषण भी लिखे हों वहां २ परमेश्वर का ग्रहण नहीं होता।

इस से स्पष्ट है कि श्री स्वामी जी महाराज स्वयं चन्द्र, मंगल आदि शब्दों को केवल परमात्मा वाचक ही नहीं मानते, बल्कि इन नामों को प्रकरण और विशेषणों के अनुकूल परमात्मा वाचक मानते हैं इस लिये ये नाम ग्रहों के भी होने पर स्वामी जी के पक्ष से कोई विरोध नहीं। अतः ज्योतिष् नामक वेदाङ्ग के व्यर्थ होने की आप की चिन्ता ही व्यर्थ है।

प्रश्न—' ओं तच्चक्षुर्देवहितम् ' इत्यादि मन्त्र से स्वामी जी ने विवाह में सूर्य-दर्शन कराने का विधान किया है। निष्क्रमण संस्कार में इसी मन्त्र से सूर्य दिखाने का विधान है। इस मन्त्र का देवता भी सूर्य है। यदि कहो कि यहां सूर्य का अर्थ परमात्मा है, तो फिर इसी मन्त्र से क्यों सूर्य दिखाया गया है और किसी मन्त्र से यह काम क्यों नहीं किया जाता है? इस का मतलब है कि यहा सूर्य शब्द का अर्थ भौतिक सूर्य है।

उत्तर—सूर्य शब्द का अर्थ भौतिक सूर्य भी हो सकता है और परमात्मा भी। यह ऊपर दिखाया जा चुका है कि स्वामी जी महाराज का यह पक्ष नहीं कि सूर्यादि शब्दों का अर्थ केवल परमात्मा ही है, अन्य आचार्य भी एक एक मन्त्र के अनेक अर्थ मानते हैं, अतः निष्क्रमण आदि संस्कारों में जहां सूर्यावलोकन कराया जाता है, वहां सूर्य शब्द का अर्थ भौतिक सूर्य हो जायगा और सन्ध्या में इस शब्द का अर्थ परमात्मा होगा। स्वामी जी के पक्ष के अनुसार इस में कोई आपत्ति नहीं। सूर्यावलोकन के समय अपने जीवन के लिये शिक्षा लेकर अपने जीवन को तेजस्वी बनाने का, और संसार में प्रकाश फैलाने का व्रत ले। सन्ध्या के समय सूर्य नामक परमात्मा से प्रार्थना करे और अपने जीवन को प्रकाशमय और तेजोमय बनाने के लिये प्रभु से शक्ति मांगे।

प्रश्न—(क) ओं अग्निर्भूतानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदमग्नये इदन्नमम '।

इस प्रकार प्रत्येक देवता का नाम बदल २ कर अन्य देवताओं के नामों से आहुतियां देना विवाह में अभ्यातन होम लिखा है—इन्द्र, यम, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, वरुण, समुद्र, रुद्र, विष्णु, मरुत्—अब यहां यदि सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि नाम परमात्मा के हैं तो चन्द्रमा के साथ ' नक्षत्राणामधिपतये ' और सूर्य के साथ ' दिवोऽधिपतये ' आदि क्यों लिखा है? इस से प्रतीत होता है कि ये नाम भौतिक देवताओं के हैं।

(ख) मन्त्र पढ़ कर विवाह में यज्ञ कुण्ड की चार प्रदक्षिणा करवाई गई हैं। यहां पर अग्नि का अर्थ भौतिक अग्नि है।

(ग) विवाह में कलश से लेकर एक आदमी कन्या और वर पर जल के छींटे देता है और ' आपो हिष्ठा मयोभुवः................. ' इत्यादि ऋग्वेद के चार मन्त्र बोले जाते हैं, यहां स्पष्ट 'आप' शब्द पड़ा है, अब यदि 'आप' शब्द का अर्थ परमात्मा

है तो 'अग्निमीळे' आद कोई और परमात्मा वाची मन्त्र बोल लेना चाहिये । जल छिड़कना और 'आपो हिष्ठा मयोभुवः.........' इत्यादि ऋग्वेद के चार मन्त्र बोलना यही प्रकट करता है, कि यहां 'आप' का अर्थ भौतिक जल है।

(घ) 'शन्नो देवी' आदि मन्त्र बोल कर तीन आचमन करें । यहां पर जल वाची मन्त्र पढ़ने का तात्पर्य यही है कि 'आप' शब्द भौतिक जल का ही वाचक है।

(ङ) प्रातः काल हवन करते समय 'सूर्यो ज्योति' आदि और सायं काल हवन करते समय 'अग्निर्ज्योति' आदि मन्त्रों से आहुतियां देना यही प्रकट करता है कि प्रातः काल सूर्य में प्रकाश रहता है और सायं काल वही प्रकाश अग्नि में चला जाता है, तो यहां पर सूर्य और अग्नि परमात्मा के वाचक नहीं हो सकते । इन शब्दों का अर्थ भौतिक सूर्यादि हैं।

(च) ओं सानुगायेन्द्राय नमः ॥ इस से पूर्व ॥
ओं सानुगाय यमाय नमः ॥ इस से दक्षिण ॥
ओं सानुगाय वरुणाय नमः ॥ इस से पश्चिम ॥
ओं सानुगाय सोमाय नमः ॥ इस से उत्तर ॥
ओं मरुद्भ्यो नमः ॥ इस से द्वार ॥
ओं अद्भ्यो नमः ॥ इस से जल ॥

} संस्कार विधि बलिवैश्व–देव यज्ञ

यहां जल वाची शब्द कह कर जल में भाग धरना, इन्द्र की दिशा पूर्व और यम की दिशा दक्षिण है, इस से भी यही प्रतीत होता है कि ये सब नाम भौतिक देवताओं के हैं।

उत्तर—इन सब प्रश्नों का सार यह है कि–अग्नि, इन्द्र, यम, वायु, सूर्य, चन्द्रमा वरुण, समुद्र, रुद्र,विष्णु,मरुत्,आप,सोम आदि नाम विशेष प्रकरणों में भौतिक पदार्थों के हैं। यह ऊपर दिखाया जा चुका है कि ये नाम सदा सब अवस्थाओं में परमात्मा के ही वाचक हों, ऐसा ऋषि दयानन्द का सिद्धान्त नहीं है । ये नाम प्रकरण और विशेषण के अनुसार परमात्मा के वाचक होते हैं, और प्रकरणादि के अनुसार ये नाम भौतिक पदार्थों के भी वाचक हो जाते हैं।

विवाह में जब चार प्रदक्षिणा करवाई जाती हैं, उस समय कई मन्त्र पढ़े जाते हैं। उन में पहले मन्त्र से शिलारोहन कराया जाता है, अगले तीन मन्त्रों से धाणी की आहुतिया दी जाती हैं। इस से अगला मन्त्र वर बोलता है, उस में कन्या को सम्बोधन किया गया है, अगले दोनों मन्त्र भी इसी प्रकार से वर बोलता है।

इन मन्त्रों में तीन मन्त्रों में अग्नि शब्द आया है, वे मन्त्र और उन के अर्थ नीचे दिये जाते हैं—

अर्यमणं देवं कन्या अग्निमयक्षत। स नो अर्यमा देवः प्रेतो मुञ्चतु मा पते स्वाहा। इदमर्यम्णे अग्नये इदन्नमम ॥

ओं इमाँल्लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव। मम तुभ्यं च संवननं तदग्निरनुमन्यतामयिꣳ स्वाहा। इदमग्नये इदन्नमम ॥

अर्थ—(कन्याः) कन्याएं (अर्यमणं) न्यायकारी नियन्ता (अग्नि देवम्) जिस पूजनीय देव ईश्वर की (अयक्षत) पूजा करती हैं (सः) वह (अर्यमा देवः) न्यायकारी दिव्य स्वरूप परमात्मा (नः) हम को (इतः) इस पितृ कुल से (प्र, मुञ्चतु) छुड़ावे और (पतेः) पति के साहचर्य से (मा) न छुड़ावे।

हे पते! (इमम्) यह मैं (तव) तेरी (समृद्धिकरणम्) वृद्धि के लिये (इमान् लाजान्) इन खीलों को (अग्नौ) अग्नि में (आवपामि) छोड़ती हूं (मम) मेरा (तुभ्यं च) और तेरा (संवननम्) परस्पर अनुराग हो (तत्) उस में (अग्निः) पूजनीय परमात्मा (अनुमन्यताम्) सहायक हो।

ओं तुभ्यमग्ने पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह।
पुनः पतिभ्यो जायां दाऽग्ने प्रजया सह ॥

अर्थ—हे (अग्ने) पूजनीय परमात्मन्! (तुभ्यम्) तुम्हारी परिचर्या के लिये (परि अवहन्) हम ने इस कन्या को स्वीकार किया है, यह कन्या (सूर्याम्) सूर्य की दी हुई शोभा को (वहतु) प्राप्त हो और (सह) साथ ही (ना) इस का पति रूप पुरुष मैं भी प्रतिष्ठा आदि जन्य शोभा को प्राप्त होऊं। (पुनः) कालान्तर में (अग्ने) हे ईश्वर! (प्रजया सह) पुत्रों के साथ (पतिभ्यः) पति कुल वालों के लिये (जायाम्) इस जाया को (दाः) दीजिये।

इन मन्त्रों में अग्नि शब्द परमात्मा वाचक है, केवल एक स्थान पर भौतिक अग्नि का वाचक है। अतः स्वामी जी का पक्ष ही यहां भी ठीक सिद्ध होता है, कि अग्नि शब्द प्रकरणानुसार भौतिक अग्नि तथा परमात्मा का वाचक है।

ऋषि ने आचमन मन्त्र के भौतिक जल परक और परमात्मा परक दोनों अर्थ किये हैं।

प्रश्न—(च) का समाधान अनेक प्रकार से हो सकता है—

(i) सब दिशाओं के प्राणियों के लिये अन्न का भाग रखा जाता है, और परमात्मा का नाम ले कर रखा जाता है। वैदिक धर्म का यह महत्व है कि प्रत्येक शुभ कर्म परमात्मा के निमित्त किया जाता है, इस प्रकार इन्द्र आदि नाम परमात्मा के वाचक होंगे। जल में भाग धरने का तात्पर्य यही है कि जलस्थ प्राणियों को अन्न दिया जाय। सब प्राणी गृहस्थ के अन्नादि पदार्थों के आश्रित रहते हैं। इस लिये गृहस्थ का यह

कर्तव्य है कि वह सब प्राणियों के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करे। यह कर्तव्य ही बलिवैश्वदेव यज्ञ में बताया गया है।

सब दिशाओं में तेजस्विनी दिशा पूर्व है और वर्णों में तेजस्वी राजवर्ग वा क्षत्रिय वर्ण है, और इन्द्र शब्द राजा का वाचक है। इस लिये पहले मन्त्र से राजा के लिये भाग धरना बताया गया है, अर्थात् गृहस्थ को उपदेश है कि एक नागरिक के रूप से उस का कर्तव्य है कि राजा का कर दे, ताकि राज्य प्रबन्ध अच्छी प्रकार से चल सके। राजा का कार्य कभी नहीं चल सकता, यदि उस के राज्य में न्याय न हो। इस लिए न्यायाधीश उस का दक्षिण हाथ है। यम का कार्य न्याय करना है, अतः यम शब्द न्यायाधीश का वाचक है। इस लिए अगले मन्त्र से दक्षिण में भाग रखने का विधान है। वह भाग न्यायाधीशों के लिए है।

यदि राज्य में न्याय की अवश्यकता है, तो धर्मशास्त्र (कानून) का बनाना भी आवश्यक है, इस लिए धर्मशास्त्री (Legislators) वरुण लोग हैं, जो कि सदाचारी विद्वान् होंगे। पश्चिम में उन के लिए भाग रखा जाता है। राज्य कानून के आधार पर चलता है, कानून राज्य की पीठ, वा रीढ़ है, इस लिए उस के लिए भाग पश्चिम वा पीठ की ओर वाली दिशा में रखा गया है।

अध्यापक और उपदेशक लोग प्रजा को विद्या,धर्मादि से युक्त करते हैं तभी प्रजा सुखी रहती है। इस लिए उन के लिए भाग चौथी दिशा में रखा गया है। वे शान्ति के प्रचारक हैं, इस लिए उन को सोम कहा गया है।

मरुत् शब्द वायु का वाचक है। वायु द्वार से ही आती है, इस लिए द्वार की ओर अन्न धरने का विधान किया है।

जल में भाग धरने का तात्पर्य जलस्थ जीवों का पालन है।

इस प्रकार से यह बात ऋषि के सिद्धान्त में आपत्ति जनक नहीं है।

शेष प्रश्नों का उत्तर वही है जो ऊपर दिया जा चुका है कि ये सब नाम प्रकरणानुसार परमात्मा के तथा भौतिक पदार्थों के हो जायंगे।

प्रश्न—इन्द्र, वरुण, यम, कुवेर ये नाम दिक्पालों के हैं, स्वयं स्वा० दयानन्द सरस्वती ने 'प्राची दिक्' आदि मन्त्रों का अर्थ करते हुए इस बात को लिखा है।

पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश ये पांच नाम प्रकृति के विकारों के हैं।

देवी, शक्ति, श्री, लक्ष्मी, सरस्वती ये पांच नाम तत्तद्विषय की अधिष्ठात्री देवियों के हैं।

उत्तर—यह बात ऋषि दयानन्द सरस्वती ने 'प्राचीदिक्' आदि मन्त्रों के अर्थ में नहीं लिखी कि इन्द्र आदि नाम दिक्पालों के हैं,परमात्मा के नहीं। इस प्रश्न के कुछ भाग

का उत्तर हम एक और वादी के उत्तर में दे भी आए हैं। ऋषि दयानन्द सरस्वती तो सब दिशाओं में पालक परमात्मा को ही मानते हैं, और ऐसा ही उन्हों ने वहां लिखा है—

"सर्वासु दिक्षु व्यापकमीश्वरं सन्ध्यायामग्न्यादिभिर्नामभिः प्रार्थयेत् । यत्र स्वस्य मुखं सा प्राची दिक् । तथा यस्यां सुर्य उदेति सापि प्राचीदिगस्ति । तस्या अधिपतिरग्निरर्थात् ज्ञानस्वरूपः परमेश्वरः" ॥

"दक्षिणस्या दिश इन्द्रः परमैश्वर्ययुक्तः परमेश्वरोऽधिपतिरस्ति"।

"तथा (प्रतीची दिग्०) अस्या वरुणः सर्वोत्तमोधिपतिः परमेश्वरः"॥

अर्थात् सब दिशाओं में व्यापक ईश्वर की सन्ध्या में अग्न्यादि नामों से प्रार्थना करे। .... प्राची दिशा का अधिपति अग्नि अर्थात् ज्ञानस्वरूप परमेश्वर है। दक्षिण दिशा का अधिपति इन्द्र परमैश्वर्ययुक्त परमेश्वर अधिपति है।

प्रतीची दिशा का अधिपति वरुण अर्थात् सर्वोत्तम परमेश्वर अधिपति है।

इस लिए वादी का आक्षेप मिथ्या है।

पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश ये पांच नाम भूतों के हैं, इस बात को हम भी मानते हैं और ऋषि दयानन्द सरस्वती के पक्ष के भी यह बात अनुकूल हैं। क्योंकि उन का पक्ष यही है कि 'ओं' नाम तो परमात्मा ही का है, अग्नि आदि नाम प्रकरणानुसार परमात्मा वा अन्य पदार्थों के हो जाते हैं। इस लिये ये पांच भूतों के नाम होने से कोई हानि नहीं। ऋषि ने स्वयं इन को पांच भूतों के नाम सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास में बताया है। परन्तु ये नाम परमात्मा के भी हो सकते हैं, इस से आप नकार नहीं कर सकते क्योंकि इन नामों के ईश्वर वाचक होने में हम ने ऊपर ऐसे ग्रन्थों के प्रमाण दिए हैं, जिन की प्रामाणिकता आप अस्वीकार नहीं कर सकते।

इसी प्रकार देवी, शक्ति, श्री, लक्ष्मी, और सरस्वती इन के ईश्वर वाचक होने में भी जो प्रमाण ऊपर दिए गये हैं, उन की प्रामाणिकता भी आप को स्वीकार करनी ही पड़ेगी। इन को अधिष्ठात्री देवियां मानना बहुत पिछले काल की कवियों की कल्पना है, इस के लिए कोई प्राचीन शास्त्रीय आधार नहीं है।

प्रश्न—स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ईश्वर के १०० नाम लिख कर ब्रह्मा, विष्णु आदि ईश्वर के नाम बतलाए हैं, और फिर उन को पूर्वज महाशय विद्वान् कह दिया। अब कहिये इस में सत्य क्या है? अगर आप विद्वान् बतलाते हैं, तो इन के मां बाप का नाम बतलाईये। यदि ईश्वर मानें तो साकार स्वीकार करना पड़ेगा।

उत्तर—इस प्रश्न के कुछ भाग का उत्तर हम ऊपर पृष्ठ ३० पर दे आए हैं—कि ब्रह्मा, विष्णु आदि नाम स्वामी जी महाराज ने परमात्मा के बताए हैं, और इन को पूर्वज महाशय विद्वान् भी कहा है, इन दोनों में कोई विरोध नहीं, ये

परमात्मा के नाम होते हुए भी पूर्वज विद्वानों के हो सकते हैं। हम आज कल भी लोगों के ऐसे नाम देखते हैं। परमात्मा का नाम परमेश्वर है, मालाबार में कई व्यक्तियों का नाम परमेश्वर होता है। परमात्मा सच्चिदानन्द है, कई साधु अपना नाम सच्चिदानन्द रख लेते हैं। क्या यह आवश्यक है कि जिस व्यक्ति का नाम किसी को पता हो उस के मां बाप का भी अवश्य पता होना चाहिये? ऐसे सैंकड़ों आदमी होते हैं जिन के नाम हमें पता होते हैं, केवल नाम ही नहीं, बल्कि उन के साथ पर्याप्त मेल जोल होने पर भी उन के माता पिता का नाम नहीं पता होता, तो क्या ऐसी अवस्था में आप उन लोगों के व्यक्तित्व को स्वीकार करने से नकार कर देंगे? इस समय देश में इतने नेता और विद्वान् हैं उन के मां बाप के नाम सब को पता नहीं हैं, ऐसा होते हुए भी उन के होने से कोई नकार नहीं कर सकता। इसी प्रकार से ब्रह्मा, विष्णु आदि पूर्वज विद्वानों के माता पिता के नाम न बताए जा सकने मात्र से उनकी सत्ता से नकार नहीं किया जा सकता। इस बात में भी कोई हेतु नहीं कि यदि ब्रह्मा, विष्णु आदि परमात्मा के नाम हैं तो परमात्मा को साकार स्वीकार करना पड़ेगा। भला इस हेतु को कौन सद्धेतु मान सकता है—परमात्मा साकार है (प्रतिज्ञा), क्योंकि उस के नाम ब्रह्मा, विष्णु आदि हैं (हेतु)। न ही ब्रह्मा, विष्णु आदि नामों के अर्थों से साकारता सिद्ध होती है, और न ही इस हेतु से परमात्मा साकार सिद्ध होता है, और न ही किसी आर्ष शास्त्र में ब्रह्मात्व और विष्णुत्व का लक्षण ऐसा आया है कि जिस से परमात्मा में साकारता सिद्ध हो जाए। अतः यह आक्षेप सर्वथा युक्तिशून्य है।

प्रश्न—स्वामी जी ने ऊपर लिखा है कि उन्हों ने परमात्मा के सौ नाम लिखे हैं। वे कौन २ से नाम हैं जिन की संख्या सौ है, क्योंकि यदि सब नामों को जो कि इस समुल्लास में दिये गए हैं, गिन लिया जाय तो संख्या १०० से अधिक बनती है।

उत्तर—१०० नामों की गणना नीचे लिखे प्रकार से करनी चाहिये—

नामों की प्रकार के जो शब्द इस समुल्लास में आए हैं, वे ये हैं—

(१) विराट् (२) अग्नि (३) विश्व (४) हिरण्यगर्भ (५) वायु (६) तैजस (७) ईश्वर (८) आदित्य (९) प्राज्ञ (१०) मित्र (११) वरुण (१२) अर्यमा (१३) इन्द्र (१४) बृहस्पति (१५) विष्णु (१६) उरुक्रमा (१७) ब्रह्म (१८) सूर्य (१९) आत्मा (२०) परमात्मा (२१) परमेश्वर (२२) सविता (२३) देव (२४) कुवेर (२५) पृथिवी (२६) जल (२७) आकाश (२८) अन्न (२९) अन्नाद (३०) अत्ता (३१) वसु (३२) रुद्र (३३) नारायण (३४) चन्द्र (३५) मङ्गल (३६) बुध (३७) शुक्र (३८) शनैश्चर (३९) राहु (४०) केतु (४१) यज्ञ (४२) होता (४३) बन्धु (४४) पिता (४५) पितामह (४६) प्रपितामह (४७) माता (४८) आचार्य

(४९) गुरु (५०) अज (५१) ब्रह्मा (५२) सत्य (५३) ज्ञान (५४) अनन्त (५५) अनादि (५६) आनन्द (५७) सत् (५८) चित् (५९) सच्चिदानन्द (६०) नित्य (६१) शुद्ध (६२) बुद्ध (६३) मुक्त (६४) नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव (६५) निराकार (६६) निरञ्जन (६७) गणपति (६८) गणेश (६९) विश्वेश्वर (७०) कूटस्थ (७१) देवी (७२) शक्ति (७३) श्री (७४) लक्ष्मी (७५) सरस्वती (७६) सर्वशक्तिमान् (७७) न्यायकारी (७८) दयालु (७९) अद्वैत (८०) निर्गुण (८१) सगुण (८२) अन्तर्यामी (८३) धर्मराज (८४) यम (८५) भगवान् (८६) मनु (८७) पुरुष (८८) विश्वम्भर (८९) काल (९०) शेष (९१) आप्त (९२) शंकर (९३) महादेव (९४) प्रिय (९५) स्वयम्भू (९६) कवि (९७) शिव (९८) ओम् (९९) भूमि (१००) स्वराट् (१०१) सुपर्ण (१०२) गरुत्मान् (१०३) मातरिश्वा (१०४) दिव्य (१०५) कालाग्नि (१०६) प्रजापति (१०७) प्राण (१०८) खम् (१०९) अक्षर।

ऊपर की १०९ की सूची में से जो नाम नहीं गिनने चाहियें वे हेतु सहित नीचे दिये जाते हैं।

(१) आत्मा—क्योंकि परमात्मा शब्द को सिद्ध करते हुए उसी मार्ग में एक पड़ाओ (stage) आत्मा शब्द है, आत्मा पृथक् नाम नहीं है। वहां लिखा है—

"अत सातत्यगमने" इस धातु से "आत्मा" शब्द सिद्ध होता है "योऽतति व्याप्नोति स आत्मा" जो सब जीवादि जगत में निरन्तर व्यापक हो रहा है"।

इस से आगे वाक्य को बिना समाप्त किये ही लिखा है—

"परश्चासावात्मा च य आत्मभ्यो जीवेभ्यो सूक्ष्मेभ्यः परोऽतिसूक्ष्मः स परमात्मा जो सब जीव आदि से उत्कृष्ट और जीव प्रकृति तथा आकाश से भी अति सूक्ष्म और सब जीवों का अन्तर्यामी आत्मा है, इस से ईश्वर का नाम परमात्मा है।"

इस से स्पष्ट है कि आत्मा शब्द की निरुक्ति परमात्मा शब्द की सिद्धि के लिये ही की गई, आत्मा स्वतन्त्र नाम के रूप में नहीं लिखा गया।

(२) ओम्—यह परमात्मा का मुख्य नाम है। इस के अन्तर्गत परमात्मा के सब गुण कर्म स्वभाव आ जाते हैं। परन्तु ये सौ नाम एक २ गुण कर्म स्वभाव के हैं, इस लिये 'ओं' को १०० में नहीं गिनना चाहिये।*

(३, ४, ५, ६,)—नित्य, शुद्ध बुद्ध, मुक्त—इन सब को पृथक् गिनने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि ये सब नाम नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव इस नाम के अन्तर्गत आ जाते हैं।

* देखो सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ १३—"उन में से प्रत्येक गुण कर्म और स्वभाव का एक २ नाम है"।

(७, ८, ९)-सत् चित, आनन्द—इन नामों को भी पृथक् गिनने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि ये नाम "सच्चिदानन्द स्वरूप" इस नाम के अन्तर्गत आ जाते हैं।

ऊपर की १०९ की सूची में से इन ९ नामों को निकाल दिया जाय, तो शेष १०० ही रह जाते हैं।

मूल—(प्रश्न) जैसे अन्य ग्रन्थकार लोग आदि, मध्य और अन्त में मङ्गलाचरण करते हैं वैसे आपने कुछ भी न लिखा न किया ?

(उत्तर) ऐसा हम को करना योग्य नहीं क्योंकि जो आदि, मध्य और अन्त में मङ्गल करेगा तो उस के ग्रन्थ में आदि मध्य तथा अन्त के बीच में जो कुछ लेख होगा वह अमङ्गल ही, रहेगा इस लिये **"मङ्गलाचरणं शिष्टाचरात् फलदर्शनाच्छ्रुतितश्चेति"** यह सांख्यशास्त्र(अ०५।सू०१) का वचन है। इस का यह अभिप्राय है कि जो न्याय, पक्षपात रहित, सत्य वेदोक्त ईश्वर की आज्ञा है उसी का यथावत् सर्वत्र और सदा आचरण करना मङ्गलाचरण कहाता है। ग्रन्थ के आरम्भ से ले के समाप्तिपर्यन्त सत्याचार का करना ही मङ्गलागरण है, न कि कहीं मङ्गल और कहीं अमङ्गल लिखना। (पृष्ठ १३)

देखिये महाशय महर्षियों के लेख को—

यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि ॥

यह तैत्तिरीयोपनिषद् (प्रपाठक ७। अनु० ११) का वचन है। हे सन्तानो ! जो "अनवद्य" अनिन्दनीय अर्थात् धर्मयुक्त कर्म हैं वे ही तुम को करने योग्य हैं अधर्मयुक्त नहीं। इस लिए जो आधुनिक ग्रन्थों में "श्रीगणेशाय नमः" "सीतारामाभ्यां नमः" "राधाकृष्णाभ्यां नमः" "श्रीगुरुचरणारविन्दाभ्यां नमः" "हनुमते नमः" वटुकाय नमः" "भैरवाय नमः" "शिवाय नमः" "सरस्वत्यै नमः" "नारायणाय नमः" इत्यादि लेख देखने में आते हैं इन को बुद्धिमान् लोग वेद और शास्त्रों से विरुद्ध होने से मिथ्या ही समझते हैं क्योंकि वेद और ऋषियों के ग्रन्थों में कहीं ऐसा मङ्गलाचरण देखने में नहीं आता और आर्षग्रन्थों में "ओ३म्" तथा "अथ" शब्द तो देखने में आता है। देखो—

"अथ शब्दानुशासनम्" अथेत्ययं शब्दोऽधिकारार्थः प्रयुज्यते।

यह व्याकरणमहाभाष्य।

"अथातो धर्मजिज्ञासा" अथेत्यानन्तर्ये वेदाध्ययनानन्तरम्।

यह पूर्वमीमांसा।

"अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः" अथेति धर्मकथनानन्तरं धर्मलक्षणं विशेषेण व्याख्यस्यामः। यह वैशेषिकदर्शन।

"अथ योगानुशासनम्" अथेत्ययमधिकारार्थः। यह योगशास्त्र।

"अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः" सांसारिकविषयभोगानन्तरं त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्त्यर्थः प्रयत्नः कर्त्तव्यः।

यह सांख्यशास्त्र।

" अथातो ब्रह्मजिज्ञासा " । "चतुष्टयसाधनसम्पत्त्यनन्तरं ब्रह्म जिज्ञास्यम् । यह वेदान्तसूत्र है ।

" ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत " ।

यह छान्दोग्य उपनिषद् का वचन है ।

" ओमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वं तस्योपव्याख्यानम् " ।

यह माण्डूक्य उपनिषद् के आरम्भ का वचन है । (पृष्ठ १४)

भाष्य—ऋषि के ऊपर के मंगलाचरण विषयक लेख से उन का इस विषय में यह पक्ष संक्षेपतः निकलता है—

ओं, अथ आदि आर्ष मंगलाचरण (यदि यह मंगलाचरण है तो) करना चाहिये । श्री गणेशाय नमः, सीतारामाभ्यां नमः इत्यादि आधुनिक मंगलाचरण के श्री स्वामीजी विरुद्ध हैं । उन के इस पक्ष को न समझ कर कई लोगों ने आक्षेप किये हैं । नीचे उन आक्षेपों को उद्धृत करके उन का उत्तर दिया जाता है ।

प्रश्न—(१) स्वामी जी ने मंगलाचरण का खण्डन किया है, अपने आप अपने ही कथन के विरुद्ध किया है,अर्थात् अपने ग्रन्थों में मंगलाचरण किया है, जैसे सत्यार्थ-प्रकाश के आरम्भ में 'ओं सच्चिदानन्देश्वराय नमो नमः' लिख कर मंगलाचरण किया है । इसी प्रकार वेदभाष्य के प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में ' ओं विश्वानि देव ' इत्यादि मन्त्र देकर मंगलाचरण किया है ।

प्र० (२) प्रतीत होता है कि स्वामी जी को परमेश्वर के कुछ नाम तो प्रिय हैं और कुछ अप्रिय हैं, देखिये प्रथम तो गणेश, गुरु, शिव, सरस्वती आदि नाम परमात्मा के लिखे हैं, अब यह कहते हैं कि इन को विद्वान् मिथ्या ही समझते हैं । जैसे आप ने धातुओं से परमेश्वर के नाम सिद्ध किये हैं, ऐसे ही ' रमु क्रीड़ायां ' आदि धातुओं से राम, हरि, कृष्ण आदि नाम भी उसी परमात्मा के हैं ।

प्र० (३) माङ्गलिकं आचार्यो महतः शास्त्रौघस्य मङ्गलार्थं वृद्धिशब्दमादितः प्रयुङ्क्ते । मंगलादीनि हि शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषकाणि भवन्ति, आयुष्मत्पुरुषकाणि च, अध्येतारश्च सिद्धार्था वृद्धियुक्ताः ॥ महाभाष्य १ । १ । १ ॥

अर्थ—मंगलाचरण की इच्छा से बड़े भारी शास्त्र समूह की सिद्धि के लिये मुनिवर पाणिनि के ग्रन्थ के आरम्भ में ' वृद्धि ' शब्द का प्रयोग किया है, क्योंकि जिन शास्त्रों के आरम्भ में मंगलाचरण किया जाता है, वे विस्तृत होते हैं उन के पढ़ने वाले वीर और चिरजीवी होते हैं, उन का अर्थ सिद्ध हो कर वृद्धि को प्राप्त होता है ।

मंगलाचरणं शिष्टाचारात् फलदर्शनाच्छ्रुतितश्च ॥ सांख्य० ५ । १ ॥

अर्थ—मंगलाचरण करना चाहिये, क्योंकि (शिष्टाचारात्) पहले आचार्यों ने किया है, इस लिए। (फलदर्शनात्) इस के करने से फल भी दृष्टिगोचर होता है (श्रुतितश्च) श्रुति में इस के करने का आदेश मिलता है—इस लिए ग्रन्थ के आरम्भ में मंगलाचरण अवश्य करना चाहिये।

ओं और अथ ये दो पद भी "ओमभ्यादाने" ॥ ८ । २ । ८७ ॥ और 'मंगलानन्तरारंभप्रश्नकात्स्न्र्येष्वथो अथ' इन दो प्रमाणों के आधार पर मांगलिक माने जाते हैं। आरम्भ में 'ओं' शब्द का प्रयोग मंगल है, इस लिए वेदों के आरम्भ में 'ओं' का प्रयोग होता है, अथ शब्द शास्त्रों के आरम्भ में लगना ही मंगलार्थक है।

स्वामी दयानन्द ने वेदभाष्य में स्वयं एक नवीन श्लोक बना कर मंगलाचरण किया है। सत्यार्थप्रकाश में ओं और अथ ये दोनों मंगल हैं। गणेश आदि नाम भी ईश्वर के मान कर उन का निर्वचन किया है, जब गणेश नाम ईश्वर का है, तब "श्री गणेशाय नमः" इस में क्या दोष है? वेद भाष्य में प्रत्येक अध्यायारम्भ में "विश्वानि देव" यह मन्त्र स्वामी दयानन्द ने लिखा है। यह मध्य २ मंगल करना उन के वदतोव्याघात को सिद्ध करता है। स्वयं मंगल करते हुए औरों के लिये मंगल का निषेध करना महा पाप है। संसार में जो जिस का इष्ट, वह उसी का ग्रन्थारम्भ में नमन करता है, यह नियम है। दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में जो जो ईश्वर के १०० नाम लिखे हैं, प्रायः सनातनी विद्वान् उन्हीं को मंगल में रखते हैं।

प्र०—(४) जब ये १०० नाम ईश्वर के हैं तो फिर इन के उच्चारण में दोष क्या है? क्या ईश्वर को एक नाम प्यारा और दूसरे से दुश्मनी है? और यदि है तो आप ने क्यों लिखे?

स्वामी जी कहते हैं कि हरि, हरि ओं करना वेद विरुद्ध है, फिर यह तो बतलाईये कि वेद में कहीं अथ, ओं भी तो नहीं है, फिर यदि आप वेदानुकूल चलते हैं, तो यह क्यों लिखा है? और जब ओं आप लिखते हैं तो हरि से आप की क्या दुश्मनी है? वह भी तो ईश्वर का नाम है।

प्र०—(५) इस समुल्लास में शिव नाम परमात्मा का लिखा है तथा समुल्लास ११ में रुद्र, शिव, विष्णु, गणपति, सूर्यादि ये सब नाम परमेश्वर के हैं, यह लिखा है, और इस समुल्लास के अन्त में और ११ वें समुल्लास में निन्दा की है, यजुर्वेद १६–४१ में स्पष्ट 'नमः शिवाय' आया है, अतएव वेद की निन्दा की है।

प्र०—(६) इसी समुल्लास में एक स्थल पर तो परमात्मा का नाम नारायण लिखा है, फिर समुल्लास के अन्त में उसी को वेद शास्त्र विरुद्ध और मिथ्या कहा है।

प्र०—(७) शिव, रुद्र, नारायण आदि नाम परमात्मा के स्वामी जी ने प्रथम समुल्लास में लिखे हैं, फिर 'नमः शिवाय', 'श्री गणेशाय नमः' आदि का खण्डन किया है।

उत्तर—इन सब आक्षेपों का रूप यह रह जाता है—

i) स्वामी जी ने मंगलाचरण का खण्डन किया है और अपने आप मंगलाचरण किया है ।

ii) स्वामी जी शिव, गणेश, रुद्र, नारायण आदि नाम परमात्मा के मानते हैं, और सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में व्याकरण द्वारा इन नामों को परमात्मा के नाम स्वीकार भी किया है, फिर इन के द्वारा मंगलाचरण का निषेध क्यों किया है ?

iii) स्वामी जी ने वेद भाष्य में प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में " विश्वानि देव " आदि मन्त्र लिखा है, यह मध्य २ में मंगल किया है, जिस का खण्डन स्वामी जी ने किया है ।

iv) वेद में " नमः शिवाय " आता है, स्वामी जी ने इस का खण्डन करके वेद के विरुद्ध लिखा है ।

v) स्वामी जी लिखते हैं कि हरि, हरि ओं करना वेद विरुद्ध है, यदि ऐसा है तो वेद में ओं और अथ भी तो नहीं है, फिर यदि स्वामी जी वेदानुकूल ही चलते हैं तो उन्हों ने यह क्यों लिखा है ? जब ओं लिखते हैं तो हरि से क्या दुश्मनी है ? वह भी तो परमात्मा का नाम है ।

इन सब आक्षेपों का उत्तर—

i) श्री स्वामी जी महाराज वैदिक और आर्ष बातों के प्रचारक थे । मध्यकाल में पुस्तकों के लेखकों ने विशेष प्रकार के वचनों को अपने ग्रन्थों के आदि में लिखना आरम्भ कर दिया और इस प्रथा का नाम मंगलाचरण रखा । पौराणिक काल में जब परमात्मा के स्थान पर अनेक देवी देवताओं की पूजा होने लगी, ग्रन्थकारों ने इन देवी देवताओं को नमस्कार रूप मंगलाचरण करना आरम्भ कर दिया । इस प्रकार की प्रथा क्योंकि वैदिक और आर्ष नहीं थी, श्री स्वामी जी महाराज ने इस का खण्डन किया । स्वामी जी ने ऐसे ही मंगलाचरण का खण्डन किया है, जो कि वैदिक और आर्ष ग्रन्थों में नहीं पाया जाता । वे ' सीतारामाभ्यां नमः ' ' हनुमते नमः ' इत्यादि पौराणिक मंगलाचरणों के उदाहरण दे कर लिखते हैं कि—

" इन को बुद्धिमान् लोग वेद और शास्त्रों से विरुद्ध होने से मिथ्या ही समझते हैं, क्योंकि वेद और ऋषियों के ग्रन्थों में कहीं ऐसा मंगलाचरण देखने में नहीं आता " ।

इस से स्पष्ट है कि श्री स्वामी जी महाराज ने ऐसे मंगलाचरण (पौराणिक) का खण्डन किया है, और उन्हों ने जिस प्रकार का मंगलाचरण किया है, उस का खण्डन भी नहीं किया । वे ऊपर के वाक्य के पश्चात् लिखते हैं—

" और आर्ष ग्रन्थों में ' ओ३म् ' तथा ' अथ ' शब्द तो देखने में आता है। देखो—"

इस के आगे कई आर्ष ग्रन्थों के प्रमाण उदाहरण रूप में उपस्थित किये गए हैं। उन के आगे फिर लिखते हैं—

" ऐसे ही अन्य ऋषि मुनियों के ग्रन्थों में ' ओ३म् ' और ' अथ ' शब्द लिखे हैं, वैसे ही (अग्नि, इट्, अग्नि, ये त्रिषप्ताः परियन्ति०) ये शब्द चारों वेदों के आदि में लिखे हैं। 'श्री गणेशाय नमः' इत्यादि शब्द कहीं नहीं"।

इस से श्री स्वामी जी की पोज़ीशन और भी स्पष्ट हो जाती है। वे इस ' आर्ष ' ढङ्ग के मंगलाचरण के—यदि इसे मंगलाचरण पारिभाषिक रूप से कहा जा सकता है—विरोधी नहीं थे, वे पौराणिक अनार्ष मंगलाचरण के ही विरोधी थे, उसी का उन्हों ने खण्डन किया है, और वैसा मंगलाचरण उन्हों ने अपने ग्रन्थों में कहीं नहीं किया।

महाभाष्य के इतने लम्बे चौड़े उद्धरण से भी जो कि ऊपर वादी ने उद्धृत किया है ऐसे पौराणिक मङ्गलाचरण का विधान नहीं सिद्ध होता। महाभाष्यकार अष्टाध्यायी के 'वृद्धि' शब्द को ही मङ्गलाचरण मानता है, वह किसी पौराणिक मङ्गलाचरण की आवश्यकता ही नहीं समझता इस से श्री स्वामी जी का पक्ष और भी पुष्ट होता है।

ii) यह ठीक है कि स्वामी जी शिव, गणेश, रुद्र आदि नामों को परमात्मा के नाम मानते हैं, और प्रथम समुल्लास में व्याकरण द्वारा भी इस बात को उन्हों ने स्वीकार किया है, परन्तु इन नामों द्वारा मंगलाचरण किसी भी आर्ष ग्रन्थ में नहीं किया गया। पौराणिक काल में ये नाम कल्पित देवी देवताओं के माने जाने लगे, यदि स्वामी जी इन नामों द्वारा मंगलाचरण का निषेध न करते, तो इस का तात्पर्य यह समझा जाना था कि स्वामी जी परमात्मा के स्थान पर कल्पित देवी देवताओं की पूजा के भी विरोधी नहीं हैं, और यह तात्पर्य श्री स्वामी जी के मुख्य लक्ष्य के ही विरुद्ध था, इस लिये यह आवश्यक था कि वे ऐसे मंगलाचरण का खण्डन करते और वेद में जहां २ ये नाम आए हैं, वहां २ इन का शुद्ध अर्थ जो परमात्मा है वे कर के जनता में ईश्वर पूजा का प्रचार करते।

(iii) वादी ने यह आक्षेप स्वामी जी की पोज़ीशन को बिना समझे किया है यह बात सत्यार्थप्रकाश के शब्दों से स्पष्ट है—

(प्रश्न) जैसे अन्य ग्रन्थकार लोग आदि, मध्य और अन्त में मंगलाचरण करते हैं, वैसे आपने कुछ भी न लिखा न किया ?

"उत्तर—ऐसा हम को करना योग्य नहीं, क्योंकि जो आदि, मध्य और अन्त में मङ्गल करेगा तो उसके ग्रन्थ के आदि, मध्य तथा अन्त के बीच में जो कुछ लेख होगा, वह अमंगल ही रहेगा"।

ऊपर के प्रश्न से भी वही बात पुष्ट होती है, जो ऊपर लिखी गई है, स्वामी जी का तात्पर्य पारिभाषिक रूप से मंगलाचरण का है, जो कि 'श्री गणेशाय नमः' 'सीतारामाभ्यां नमः' 'भैरवाय नमः' इत्यादि प्रायः प्रचलित हैं, और सत्यार्थप्रकाश के ऊपर के उद्धरण में प्रश्नकर्त्ता यह देखते हुए भी कि श्री स्वामी जी आरम्भ में "ओं सच्चिदानन्देश्वराय नमो नमः" और 'अथ सत्यार्थप्रकाशः" 'अथ द्वितीयः समुल्लासः' 'अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामः' इत्यादि वाक्य में सब समुल्लासों के आरम्भ में सत्यार्थप्रकाश में ही 'अथ' आदि शब्द लिख रहे हैं—यह प्रश्न करता है कि 'जैसे अन्य ग्रन्थकार लोग आदि मध्य और अन्त में मंगलाचरण करते हैं, वैसे आप ने कुछ भी न लिखा न किया' यह स्पष्ट बता रहा है कि प्रश्नकर्त्ता ओं, अथ आदि आर्ष वाक्यों को मंगलाचरण नहीं समझता, मंगलाचरण से तात्पर्य पौराणिक 'श्री गणेशाय नमः' 'भैरवाय नमः' 'राधाकृष्णाभ्यां नमः' इत्यादि है। स्वामी जी ने भी इसी प्रकार के मंगलाचरण का खण्डन किया है और 'ओं विश्वानि देव' आदि ऐसे मङ्गलाचरण का नहीं। स्वामीजी 'ओं' 'अथ' आदि और वेद मन्त्र लिखने के विरोधी नहीं हैं। वादी ने जो यह लिखा है कि स्वामी जी ने वेद भाष्य में एक नवीन श्लोक बनाकर मङ्गलाचरण किया है। प्रतीत होता है कि वादी ने उस श्लोक के पहले 'ओं' और 'अथ' जान बूझ कर नहीं देखा। यह परमात्मा की प्रार्थना के श्लोक 'ओं' और 'अथ' शब्द से पीछे आते हैं, अतः वादी का आक्षेप मिथ्या है।

(iv) वेद में 'नमः शिवाय' इतना पाठ तो आता है परन्तु इस से यह कहां सिद्ध हो गया कि इस से मङ्गलाचरण का विधान है। स्वामी जी ने 'नमः शिवाय' का खण्डन नहीं किया, उन्हों ने इस वाक्य द्वारा मङ्गलाचरण करने का खण्डन किया है, क्योंकि मध्य कालीन लोगों ने शिव का अर्थ एक कल्पित व्यक्ति कैलाश पर्वत पर रहने वाला समझ कर ईश्वर के स्थान पर उसकी पूजा करनी आरम्भ कर दी, थी और उसी को नमस्कार कर के अपने ग्रन्थ भी आरम्भ करने लगे, इस लिये ऋषि ने उस शिव को नमस्कार करके ग्रन्थों को आरम्भ करने का खण्डन कर के ईश्वरपूजा का प्रचार किया।

(v) वेद पाठ के आरम्भ में 'हरि ओं' पढ़ने का विधान किसी प्राचीन आर्ष ग्रन्थ में नहीं है। 'हरि' नाम वेद तथा प्राचीन आर्ष ग्रन्थों में परमात्मा का वाचक नहीं आता। यदि हरि शब्द परमात्मा वाचक मान भी लिया जाय तो भी वेद पाठ के

आरम्भ में 'हरि ओं' पढ़ने की शैली आर्ष नहीं है, इसी लिये ऋषि ने इस का खण्डन किया है।

ऋषि ने साथ ही यह भी बता दिया कि वास्तविक मङ्गलाचरण क्या है—

"जो न्याय पक्षपातरहित, सत्य वेदोक्त ईश्वर की आज्ञा है, उसी का यथावत् सर्वत्र और सदा आचरण करना मङ्गलाचरण कहाता है। ग्रन्थ के आरम्भ से ले के समाप्ति पर्यन्त सत्याचार का करना ही मङ्गलाचरण है।"

मङ्गलाचरणं शिष्टाचारात् फलदर्शनाच्छ्रुतितश्चेति ॥ सांख्य ५।१ ॥

सांख्य के इस सूत्र का भी इसी प्रकार के मङ्गलाचरण से तात्पर्य है। ऐसा मङ्गलाचरण सब शिष्ट लोग करते आए हैं इसी का ही फल भी देखा जाता है, और इसी प्रकार के मङ्गलाचरण का ही वेदादि आर्ष ग्रन्थों में विधान है, न कि 'श्री गणेशाय नमः' और 'राधाकृष्णाभ्यां नमः' का।

इस से स्पष्ट है कि ऋषि के मङ्गलाचरण प्रकरण पर जितने भी आक्षेप किये गए हैं वे सब निराधार हैं।

अब तक जितने सातवीं शताब्दी के पूर्व के प्राचीन शिला लेख मिले हैं उनमें से कोई भी 'श्री गणेशाय नमः' आदि पौराणिक मङ्गलाचरण से आरम्भ नहीं होता। उनके आरम्भ में भी 'ओं' और 'अथ' शब्द ही देखे गए हैं। उदाहरण के लिये कुछ ताम्र पत्र—जो कि इतने पुराने भी नहीं हैं— देखें। ये कौशल के राजा रत्न देव के हैं। उन पर तिथि चेदी सं० ८८० —लिखी है (ई० सन् ११२८)

इनके आरम्भ में "ओं नमो ब्रह्मणे" लिखा है। पहला श्लोक यह है—

निर्गुणं व्यापकं नित्यं शिवं परमकारणम्।
भावग्राह्यं परमज्योतिस्तस्मै सद्ब्रह्मणे नमः ॥

इस से यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि 'श्रीगणेशाय नमः' आदि बहुत पीछे के काल के मङ्गलाचरण हैं। प्राचीन काल में 'ओं' आदि शब्द ही आरम्भ में लिखे जाते थे।

* इति प्रथमसमुल्लासभाष्यं समाप्तम् *